आत्मोत्सर्ग

शिवनारायण द्विवेदी

हरिदास एण्ड कम्पनी

आत्मोत्सर्ग

लेखक—

शिवनारायण द्विवेदी।

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी।

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में

बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा

मुद्रित।

सन् १९१८ ई०

प्रथम बार १,०००

मूल्य ॥)

निवेदन

देश, जाति और समाज की उन्नति "आत्मोत्सर्ग" पर है। प्रकाशके द्वारा मिले हुए रंगोंमें से जो फूल जितने ही अधिक रंगोंका त्याग करता है, वह उतना ही अधिक रंगीन बनकर सुन्दर दीखता है। जो सम्पूर्ण रंगोंका त्याग कर देता है, वह सबसे अधिक सुन्दर सफेद रंग वाला बनता है, किन्तु जो सब रंगोंको पचा लेता है वह काला हो जाता है। मनुष्य समाजमें भी यही नियम काम करता है। जिन्होंने सर्वस्व का त्याग किया, वे सफेद पुष्पके समान मानव-जातिमें खिल उठे। उन्हीं थोड़े से चुने हुए श्वेत पुष्पों की यह 'आत्मोत्सर्ग' माला तैयार की गई है।

संसार भर के इतिहास में त्याग और अत्याग, स्वार्थ और परार्थ की ही कथा है। त्यागने अत्याग पर विजय पाई, स्वार्थमें परार्थ जीता, प्रकाशने अन्धकार का नाश किया, —यही इति-हास का सबसे अधिक मनोरञ्जक अधिक शिक्षाप्रद—और अधिक गौरवमय है। इस पुस्तकमें यही गौरवमय गाथा लिखी गई है।

जिन्होंने सम्पूर्ण जीवन अपने देशकी सिद्धि, धर्म व जातिके लिये बिताया —जो [illegible] [illegible] मस्तीमें [illegible] मनुष्य

कोलाहलमें 'स्वदेश-स्वदेश' रटते रहे—उन्हीं कुछ देवताओंके पुण्यचरित इसमें लिखे गये हैं।

लिखने में सम्पूर्ण आधार श्रीयोगेन्द्रनाथबन्द्योपाध्याय महोदयकी लिखी बंगाली "प्रातःस्मरणीय जीवन चरितमाला" पर रक्खा गया है। आपकी पुस्तकसे ही इस पुस्तकके अधिकांश उपकरण लिये गये हैं, अतः मैं आपका आभारी हूँ।

देहली
जन १९१७ ई०

निवेदक—
शिवनारायण द्विवेदी।

विषय-सूची ।



आत्मोत्सर्ग

पहला अध्याय ।

दारिद्र्य व्रत ।

"उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत ।"

अज्ञान रूपी नींद से उठो, जागो और सच्चे ज्ञानकी ओर चलो

समस्त संसार छान डालने पर भी केवल सुख या केवल दुख कहीं नहीं मिलता। सुखके साथ दुख और दुखके साथ सुख मिला है। दरिद्र की कुटिया और राजा के महल में भी ये दोनों विराजमान हैं; हां, अवस्था-भेद से अधिक और न्यून अवश्य है। बहुतों की धारणा है कि, दरिद्रताके समान इस विश्वमें अन्य कोई दुःख नहीं। किन्तु यह भ्रम है। चिन्ताशीलता, परदुःखका

नम्रता, सहिष्णुता, दया, ममता आदि जिन गुणों के कारण मनुष्य देवता बन जाता है, उनका विकास राजमहल की अपेक्षा दरिद्र की कुटिया में ही अधिक देखा जाता है। जिन्हें गाने-बजाने और आमोद-प्रमोद से छुट्टी ही नहीं मिलती, वे दूसरों की चिन्ता ही कैसे कर सकते हैं? जिन्हें कभी अभावका अनुभव नहीं हुआ, वे दूसरोंके दुःखसे दुःखी कैसे हों? मनमें आते ही जिनकी इच्छा पूर्ण हुई है, वे सहिष्णु कैसे बन सकते हैं? दयाकी शान्त धारासे जिनका हृदय शीतल नहीं हुआ, उन्हें दया प्रकाश करना कैसे आ सकता है? जो निरन्तर 'हाँ हुज़ूर' कहने वाले खुशामदियों से घिरे रहते हैं—जिन्हें जन्म में कभी सच्चा स्नेह प्राप्त नहीं हुआ, वे दूसरों पर सच्चा प्रेम कैसे दिखा सकते हैं?

जिनका सुख-दुःख बाह्य पदार्थों पर निर्भर है, वे कभी प्रकृत सुखी नहीं बन सकते। राजमुकुट पहनकर राज-सिंहासन पर बैठे हुए भी उनका हृदय निरन्तर काँपा करता है। इसीलिये भारतीय नीति "अनास्थाबाह्यवस्तुषु"—बाहरी उपकरणोंमें आस्था मत रक्खो—है। इसी तत्त्व पर ग्रीक-नीति-प्रवर्त्तक साक्रेटीज़ (सुक़रात) ने उपदेश दिया था कि, "तुम अपनी आवश्यकताओं को जितनी ही अधिक संकुचित करोगे, उतने ही अधिक परमात्माके निकट पहुँचोगे।"

प्रकृति पर जय प्राप्त करना ही सच्चा राज्य है। यह राजत्व किसी राजाके भाग्यमें नहीं होता। क्योंकि राजा की आव-

श्यकताएं असीम होती हैं। जो महात्मा आवश्यकताओं को कम करके प्रकृतिके बन्धन से अपने आपको छुड़ा पाता है, वही सच्चा राजा है। इस राजत्व के गौरव को भारत की आर्य जाति ने ही भली भाँति समझा था। इसीलिये आर्य तपस्वी संसार त्यागकर पर्वत की कन्दराओं में योग-साधना करते थे। उनके आत्मसंयम पर मोहित होकर बड़े-बड़े पराक्रमी राजा उनके चरणों पर लोट जाते थे।

ऊपर कहा जा चुका है कि, मनुष्य की प्रत्येक दशा सुख-दुःख मिश्रित है। केवल सुख मनुष्य के भाग्यमें नहीं। साथही केवल दुःख भी उसे नहीं भोगना पड़ता। आवश्य-कताओं के घटाने की अपेक्षा उन्हें बढ़ानेसे दुःख होता है। इन आवश्यकताओंका प्रसार ही पाश्चात्य सभ्यताका मूल है। प्रकृत आवश्यकताओं के पूरे करने की चेष्टा से ही आधुनिक शिल्प-विज्ञान का जन्म हुआ है। विज्ञान-बलसे, मनुष्य प्रकृति पर अन्य रूप से स्वामित्व करता है। विज्ञान मनुष्य को ऐसी ही शिक्षा देता है। भारतके प्राचीन आर्यों ने प्रकृति को सर्वथा अपने वशमें करके उसके बन्धनको तोड़ डाला था। आजकल के विज्ञानने उसे वश न करके, आज्ञाधीन दासी बनाया है। भारतके प्राचीन आर्य प्रकृति को अपने मार्ग में काँटे बिछाने से बलपूर्वक रोके हुए थे; आजकल का पाश्चात्य विज्ञान उसे बलपूर्वक न रोक कर काँटे से काँटा निकाल रहा है।* यह सच है कि, दोनों दशाओं में

ही सुख है, किन्तु धनी का सुख स्वाधीन और दूसरे का प्रकृति सापेक्ष है। जो सुख स्वाधीन है वही अमूल्य है-- वही प्रार्थनीय है। अधिकांश धनी इस सुखसे वंचित रहते हैं।

थोड़े संयम से ही धनवान्‌का यश चारों ओर फैल जाता है, किन्तु दरिद्र की साधना बड़ी कठोर होती है। उसे प्रति पद पर विपत्ति का सामना करना पड़ता है, इसलिये सहिष्णुता का होना आवश्यक है। उसे हर एक बातकी कमी सदा अखरा करती है, इसलिये आवश्यकताओं को भरसक संकुचित करना ही उसकी आदत बन जाती है। दरिद्र अपने अभावको समझते हैं, इसलिये दूसरों का दुःख देखकर उनका हृदय हाहाकार कर उठता है। दरिद्र संसार का प्रेम नहीं प्राप्त कर सकते, प्रेमहीन हृदयके दुःखको वे अनुभव करते हैं, इसीलिये अपने आप वे दूसरोंसे स्नेह करते हैं। दरिद्र को सब घृणा की दृष्टि से देखते हैं, घृणा की मर्म-वेदनासे उनका हृदय घुन लगी हुई लकड़ीकी तरह ओंधी बन जाता है, इसीलिये संसार की यातनाओं से व्यथित मनुष्य को देखकर वे आँसू बहाने लगते हैं—अपने आँसुओं से दूसरे को हृदय-व्यथाको धोने की कोशिश करते हैं।

दरिद्र और संन्यासी में बहुत ही कम भेद है। पर्णकुटी और वृक्ष के नीचे दोनों ही का निवास है। लँगोटी और फटे पुराने कपड़े दोनों ही की लज्जा निवारण करते हैं।

दोनोंही का गुज़र फल मूल शाक पर होता है। अनेक बार दोनों ही को अनाहार रात्रि बितानी पड़ती है। पृथ्वी बिछौना और आकाश दोनों ही का ओढ़ौना है। स्वच्छन्द उड़ती हुई धूल दोनों ही का भूषण है। भेद केवल इतना ही है कि, संन्यासी की ऐसी दशा अपने आप बनाई हुई है और दरिद्र की दैव निर्दिष्ट। संसारको असार समझकर, भोग-वाञ्छा को ठुकराते हुए संन्यासी ऐसी दशा स्वयं बना लेता है और दरिद्र पराधीनकी तरह उसासें लेता हुआ उसे भोगता है। चाहे स्वेच्छा से हो या अनिच्छा से, किन्तु व्रत का फल दोनोंके लिये समान ही है। सहिष्णुता, संयम, आत्मत्याग, परदुःखानुभव आदि मधुर गुणोंके कारण मनुष्य देवता बनता है—ये सब गुण दारिद्र व्रत पालनेसे मनुष्य में स्वतः विकसित होते हैं। इसलिये दरिद्र बिना इच्छाके भी संन्यासी है—बिना मन्त्र ग्रहण किये भी योगी है। जिसने दरिद्रव्रत में सिद्धि प्राप्त करली, वह संसार का पूज्य है—वन्द्य है। उसका हृदय दूसरों के दुःखों से रोया करता है। भूखेको देखकर हाथ का ग्रास उससे मुखमें नहीं दिया जाता। दूसरे को सर्दी से ठिठुरता देखकर वह अपना चीथड़ा दूसरे को उढ़ाने जाता है—वही देवता है।

जो जाति दरिद्र देखकर नाक सिकोड़े—घृणा करे और धनीके सामने रोटीके टुकड़े पर टकटकी लगाये कुत्तेकी तरह पूँछ हिलावे, वह जाति पतनत है। उस जाति की

अवनति निश्चय प्रारम्भ हो गई। जब मनुष्य अपने से निर्बल पर अत्याचार करे और प्रबलके अत्याचारों को चुपचाप सहे, वह सबसे अधिक नीच है। जिस समय प्रबल रोम-राज्यके विजय-दर्प से भूमण्डल काँपता था, उस समय रोम के डिक्टेटर लोग राजमुकुट को तुच्छ समझ कर खेतीसे अपना पेट पालना अच्छा समझते थे। जब तक रोम संयमी रहा, जब तक रोमको अपनी दरिद्रता से घृणा न हुई, उस समय तक रोम की रणभेरी से संसारके राजसिंहासन, आँधी से तृण की तरह कांपते रहे, किन्तु जब रोम को अपनी दरिद्रतासे घृणा हुई—जब रोम अन्यान्य देशोंसे स्वर्णमण्डित हुआ, उसी समय रोम का वीरत्व, रोम का माहात्म्य लोप हो गया। जब रोम को दरिद्रतामें लाज आने लगी, तब वह वीरजननी रोम न रहा—वह सदा-सर्वदा के लिये दासता की जञ्जीर में बँध गया—मर गया।

जिस दिन महाराष्ट्र जाति वीरकेसरी शिवाजीके आह्वान से शत्रुओं पर प्रबल आक्रमण करती थी और आवश्यकता न रहने पर अपने खेत जोतती थी, उस दिन महाराष्ट्र का स्वर्ण-युग था। क्लिष्टताके पङ्कमें वह न फँसी थी, धनलिप्सा का सपना उसने न देखा था, दरिद्रता से उसे घृणा न थी। किन्तु जिस दिन उसे दरिद्रता से घृणा हो चली—दरिद्रों के काम को नीचों का काम समझ कर उसकी घृणा की गई,

उसी दिन महाराष्ट्र व्योमचुम्बी शिखर से नीचे गिरकर, शतधा छिन्न-भिन्न होकर, पराधीन हो गया ।

संसार की प्रत्येक जाति दरिद्रता का आदर करके ऊपर चढ़ती है और दरिद्रताके निरादरसे नीचे गिर जाती है। निरन्तर बीस पीढ़ियों की पराधीनता भोगकर इटली ने अपनी भूल समझी ; उसी समय मेज़िनी, गैरीबाल्डी आदि ऋषियोंने दारिद्र्यव्रत ग्रहण किया और अपनी भोग-वासनाओंको जला-ञ्जलि देकर स्वदेश के उद्धार में अपने आपको उत्सर्ग कर दिया । वेष बदलकर, छिपकर, भूखे-प्यासे, स्थान-स्थान पर घूम कर इस संन्यासी-दलने स्वदेश के उद्धार की सामग्री एकत्र की । माता के आँसू, प्रियतमा के दीनवाक्य, छोटे सुकुमार बालकों का क्रन्दन भी उन्हें स्वदेशोद्धार के व्रत से विचलित न कर सका । जो दूधके समान श्वेत शैया पर सोते थे, स्वर्णजटित कामदार वस्त्र पहनते थे, विलासिता की गोदमें पले थे, जो स्वदेशव्रती संन्यासियों को "पागल, दरिद्र, विक्षत, रोगी" कहते थे, उनके द्वारा इटली का उद्धार नहीं हुआ । जिन्होंने धनके लोभ से विदेशी गवर्नमेण्टको मन और आत्मा तक बेच डाली थी, जो अपने मालिक को प्रसन्न करने के लिये विश्वासघात करने से भी न झिझकते थे, जो शरणापन्न स्वदेशवासियों के रक्तसे अपने मालिकों के चरण धोनेको भी तय्यार रहते थे, उन जाति-कलङ्क कुलाङ्गारोंसे इटलीका अहित के सिवाय कभी हित नहीं हुआ । प्रत्युत, उनके द्वारा इटली

का सौभाग्य-समय और दूर फेंका गया—उनके कारण इटली और अधिक समय तक पराधीन बनी रही। किन्तु जिन्होंने दरिद्रव्रत धारण किया था—उनके निरन्तर खून पसीना एक करते रहने पर, इटली को अभावनीय स्वाधीनता मिली। उन संन्यासियोंका सपना सच्चा निकला।

वीर गैरीबाल्डीने इटली के स्वयंसेवक दलका स्वामी बनकर, मुट्ठी भर जातीय युवकोंसे, प्रबल आस्ट्रिया राज्य को समरक्षेत्रमें दारिद्र्यमन्त्र की सिद्धिका फल प्रत्यक्ष दिखा दिया। यदि गैरीबाल्डी चाहता तो वह नैपोलियन की तरह इटली का सम्राट् बन जाता, किन्तु वह विक्टर इमैनुएल को राज्य देकर फिर अपनी खेती के काममें लग गया। जो सम्राट् बन सकता था, उसने अत्यधिक आग्रह करने पर भी जातीय-कोषसे पेन्शन लेना स्वीकार न किया। दारिद्र्यव्रत ही त्यागमन्त्र है। पातालमें पड़ी हुई जाति को यही स्वर्ग में चढ़ा सकता है। इसके समान और किसी मन्त्र में प्रभाव है या नहीं, सो सन्दिग्ध है।

जिस दिन भारत उन्नत था, उस दिन यह भी त्यागी था—उस दिन यह भी दारिद्र्यव्रती था। तब हजारों पारलौकिक त्यागियों के चरित्र से भारत जगमगा रहा था, उनकी आत्मत्यागकी मोहिनी शक्तिसे राजा भी अपने स्वार्थको जातीय स्वार्थ की वेदी पर चढ़ा देते थे। ब्राह्मण-जाति उस समय त्यागशिखा थी। किसानोंके खेतों से अनाज काट कर ले

जाने पर मार्ग में जो अन्न गिर पड़ता था, उसे ही बीन कर वे लोग अपना उदर भरते थे। इसे 'उञ्छवृत्ति' कहते थे। यदि भोजन करते समय कोई अतिथि आता, तो स्वयं न खाकर उसको तृप्ति करने में ही वह आनन्द मानते थे। यह मनोवृत्ति दारिद्र्यव्रत ही आपको उन्नत बनाये था। जङ्गलमें स्वाधीन भाव से पैदा हुए फल मूल और शाक ही पर उनका निर्वाह होता था। उनका प्रेम मनुष्य ही नहीं, किन्तु प्राणिमात्र पर समान था। सिंह और व्याघ्र जैसे जन्तु भी प्रेमसे मोहित होकर समय-समय पर निर्वैर दीखते थे। उनके विश्वप्रेम की मोहिनी उन पर भी जादूकासा असर करती थी। यह कोरी कथा या कवि-कल्पना नहीं, किन्तु सच्चा इतिहास है। चरित्रबल और आत्मत्यागकी मोहिनी शक्तिसे संसार वश किया जा सकता है। जो योगी इस साधना में सिद्ध है, उसके लिये असाध्य कुछ भी नहीं है। आत्मोत्सर्ग ही नेतृत्व का प्रधान लक्षण है। जो जितना ही अधिक स्वार्थत्याग कर सकता है, वह उतना ही बड़ा नेता बन सकता है।

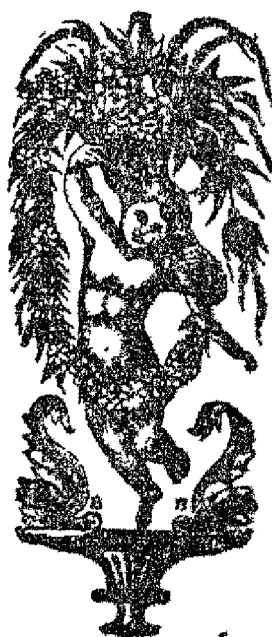
वशिष्ठ ऋषि ने अपने आश्रम से महाराज रामचन्द्रको कहला भेजा था—"महाराज, आप सिंहासन पर बैठे हैं। मैं आपको एक उपदेश देता हूँ। जो आप उसके अनुसार चलें तो आदर्श राजा होंगे। आप कभी प्रजा की इच्छा के विरुद्ध आचरण न करें।" महर्षि के इस गम्भीर उपदेशको रामने भक्तिपूर्वक शिरोधार्य किया और प्रतिज्ञा की कि,—"ऋषि के

इस आज्ञापालनमें यदि मुझे अपनी प्राणोपमा सीता का भी त्याग करना पड़े, तब भी उससे विमुख न होऊंगा।" थोड़े ही दिन पीछे राजदूत ने आकर समाचार दिया—"रावणके घरमें रहनेके कारण लोग सीताके चरित्र पर सन्देह करते हैं ; उन्हें लङ्का की अग्नि-परीक्षा पर विश्वास नहीं।" यह समाचार सुन-कर राम पहले तो वज्राहत वृक्ष की तरह सिर पकड़ कर बैठ गये। किन्तु शीघ्रही उस राज-सन्यासीने अपने कर्त्तव्य का ध्यान करते हुए अटल व्रत धारण किया। उसे याद आया कि, उसने ऋषि से यह प्रतिज्ञा की है कि, प्रजारञ्जनमें यदि उसे प्राणोपमा प्रिया सीता का भी त्याग करना पड़े, तो वह यह भी करेगा। उस प्रतिज्ञा और उस त्यागी ऋषि की आज्ञा का किसी प्रकार उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता। यदि इस असह्य वेदना से हृदय फटे तो फट जाओ, किन्तु त्यागी राम की प्रतिज्ञा विचलित न होगी। कर्त्तव्य स्थिर होगया। लक्ष्मणको बुलाकर आदेश दिया—"पूर्णगर्भा सीता को गङ्गाके किनारे त्याग कर आओ।" मनीषी के इस तीव्र आदेशको उल्लङ्घन करनेकी शक्ति लक्ष्मण में न थी। वह भीम भयानक आदेश उसी समय पालन किया गया। ऋषि की आज्ञा पूरी हुई। उपदेशक और उपदिष्ट की महिमा दशों दिशाओं में व्याप्त होगई। ऐसा उपदेश और प्रजा के स्वार्थके लिये राजस्वार्थ की ऐसी बलि, संसारके इतिहासमें खोजने पर भी, कहीं नहीं मिलती।

त्यागशक्ति की महिमा समझ कर विश्वामित्रने राज-सिंहासन छोड़ दिया था। ऐश्वर्य और हाथी घोड़ों को छोड़ कर वे संन्यासी बने थे। उन्होंने देखा कि जो नेता बनना चाहे—जो दूसरों को उपदेश देना चाहे, उसे सबसे पहले अपने स्वार्थकी बलि देनी चाहिये—अपने ऐश्वर्य को दूसरोंके हित में लगाकर उसे दारिद्र्य मन्त्र सिद्ध करना चाहिये। इसलिये अपना राज्य और राज सिंहासन त्यागकर विश्वामित्र संन्यासी बने। उनके दारिद्र्य-मन्त्र सिद्ध करते समय विश्व काँप उठा था। संसारमें न मालूम कितने राजा होकर मर गये, संसार उन्हें नहीं जानता, यदि विश्वामित्र भी राजा ही रहते तो उन्हें कौन पहचानता? किन्तु राजर्षि विश्वामित्र को संसार जानता है—भक्ति सहित सिर झुकाता है।

जिस दिन त्यागमन्त्र सिद्ध था, उस दिन भारत भी उन्नत था—जिस दिन दरिद्रता से घृणा न थी तब भारत भी संसार का नेता था। किन्तु जब से इससे घृणा हुई, तभी से भारत गिरने लगा है। हे भारत-सन्तान! उस उन्नत दिन को लानेके लिये फिर उसी त्यागमन्त्र को सिद्ध कर—फिर उसी दारिद्र्यव्रत को पालन कर। संसार की कोई शक्ति इस व्रत के पालने वालों के सामने नहीं टिक सकती। धनबल, ऐश्वर्य-बल, जनबल, आदि कोई भी बल हो, किन्तु त्यागबलके सामने सबको सिर झुकाना पड़ता है। संसार का इतिहास त्याग की कथामात्र है। जिसने त्याग स्वीकार किया वह सफल बना

है और जो अत्यागी बना उसने सर्वस्व खोया है। त्याग स्वाधीनता और अत्याग घोर पराधीनता है। दरिद्रता-व्रत पालनेवाले बिना वेषके अनेकों संन्यासी भी देशका उपकार करते हैं। वे गेरुआ कपड़ा नहीं पहनते और झोली भी नहीं लटकाते, किन्तु उनका हृदय दरिद्रों के दुःखमें निरन्तर रोता रहता है—वे भगीरथ प्रयत्न करके उनके दुःख दूर करते हैं। जिस देशमें ऐसे बिना वेष वाले संन्यासियों की संख्या बढ़ जाती है, वही देश सब का नेता बन जाता है—वही स्वाधीनता का केन्द्र बन जाता है।



दूसरा अध्याय।



विश्वप्रेम।



"सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः॥"

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।"

"जो दारिद्र्य व्रतका व्रती है वह समदर्शी योगी है। वह सबके दुःखको अपना दुःख और अपने आपको सबका बन्धु समझता है। अपने व्रत पालन में वह दुःखोंके सामने वज्रके समान कड़ा है और दूसरेके दुःखको देखकर वह पुष्पके समान कोमल बन जाता है।"

देश और जातिकी उन्नति त्यागमन्त्रके धारण करनेवालों से होती है। सच्चे दारिद्र्यव्रतके पालन करने वाले ही देश को नरकसे निकालकर स्वर्गमें आसन दिलाते हैं। इङ्गलैण्ड का उद्धार त्यागमन्त्रके धारण करनेवालोंसे ही हुआ, इटली का उद्धार संन्यासियोंसे हुआ, जापानको त्यागमूलने विजयी बनाया, चीनको दारिद्र्यप्रेमियोंने उन्नत किया। "ऐसा वर्ष

सुवर्ण चारु गन्धं, वीणा वाणी दर्शनीया वरामा" के सेवन
करने वाले किसी देश और किसी जातिका उद्धार नहीं
कर सके। वे केवल क्षुद्र स्वार्थसे निर्मम बनकर जातिकी
जीर्ण हड्डियोंको चूसने वाले बने हैं—उन्होंने केवल दरिद्रों
के शुष्क गाढ़ और निर्बल रक्तका पान करके अपनी राक्षसी
भावना पूर्ण की है। किन्तु जिसके कान निस्तब्ध अर्द्ध
रात्रिके शान्त प्रहरोंमें दुःखियोंके ओठों पर लीन हो जाने
वाली निर्बल, किन्तु दुःखपूर्ण 'आह' सुनते हैं, जिसकी आंखें
जरा-जीर्ण झुके हुए कलेवरके धक-धक कर चलनेवाले
हृदयकी धड़कन और उसके कारणको प्रत्यक्ष देखती हैं—वह
वीर दारिद्र्यव्रतका अवलम्बन करता है। उसका हृदय
विश्वके लिए रो उठता है—वह प्रेम-विगलित होकर पुष्पके
समान कोमल बन जाता है। वह कोमलता ही उसे पीछे
दुःख सहनेके लिए वज्रके समान कठोर बना देती है। त्या-
गमन्त्रको प्रारम्भ करते ही वह विश्वप्रेमी बन जाता है।
इस मन्त्रका अवलम्बन करते ही शाक्यसिंह राजसिंहासनसे
उतरकर संन्यासी बनगये। सुखोंकी खान, प्रेममयी भार्या
और सुकुमार बालक की ओर न देखकर उन्होंने विश्वको
दुःखोंसे छुड़ानेका व्रत ले लिया। उन्होंने देखा कि सुख
भोगनेसे फिर बदलेमें दुःख भी भोगना पड़ेगा। बिना दुःख
भोगे सुख किसीके भाग्यमें नहीं है—केवल दुःख या केवल
सुख संसारमें कहीं नहीं है। जन्मके साथ मृत्यु उदयक

साथ अस्त, भोगके साथ दुःख, प्रेमके साथ वियोग, सब पुष्प के साथ कांटेके समान लगे हुए हैं। इसलिए उस योगीने सोचा कि, सुख और दुःख दोनोंसे परे चलना है और संसार को भी वही मार्ग दिखाना है। यह सत्य है कि, उसकी कठोर साधना से सम्पूर्ण मनुष्य-जाति दुःखमुक्त न हो सकी, किन्तु फिर भी बहुतोंको शान्ति मिली। आत्मसंयमने उसका मार्ग साफ किया। जन मनमें भ्रातृभावका सञ्चार हुआ और घृणित श्रेणी-विभाग छूटा। किसीको किसीसे द्वेष नहीं, किसीको किसीसे घृणा नहीं। बौद्ध-जगत् से विवाद उठ गया। शाक्यसिंहके विशाल विश्वप्रेमकी छविसे बौद्ध-संसार जगमगा उठा। उसके उज्ज्वल चरित्रके प्रभाव से सेकड़ों धनी गृहस्थ और राजा त्यागमन्त्रकी दीक्षा लेने लगे। उसके धारावाही विश्वप्रेमसे मोहित होकर एक तिहाई संसार बौद्ध बन गया। उस दारिद्र्यव्रती संन्यासी-दलने संसारके मृत शरीरमें नई जान डाल दी। उस दारिद्र्य और संन्यास पर जगत् मोहित हो गया। आज बौद्धोंके उस त्यागमन्त्र में जान नहीं रही, इसीलिए उनकी अवनति भी हो चली है।

देशका उत्थान सदैव त्यागमन्त्रसे ही हुआ है। जिस समय महाराष्ट्र देश धर्मकी भीषणतासे त्राहि त्राहि कर रहा था—जिस समय नीच जातियाँ कुत्तेसे भी अधिक निकृष्ट समझी जाती थीं—तब रामदासका आविर्भाव हुआ। उस

समय समाजका कठोर शासन केवल यन्त्रणादायक था, मुस अत्याचारोंकी सीमा बढ़ रही थी, स्त्रियां बिना सहारा पाई हुई बेलकी तरह भूलुण्ठित हो रही थीं, स्वाधीन हिन्दुओंके चारों ओर घने काले मेघ कर्कश भीम गर्जना कर रहे थे—उस समय एक दरिद्रजन-पालक त्यागी रामदास खड़ा हुआ। स्वदेशकी शोचनीय अवस्थासे उसका हृदय हाहाकार कर उठा। उसने देखा कि मानव-जातिके अस्तित्वरूपी यज्ञ-कुण्डमें अपने अस्तित्वकी आहुतिके बिना देशका मङ्गल नहीं हो सकता। बिना कठोर आत्मत्यागके देश नहीं जागा करता। अपने आपको भूलकर दूसरेके लिए सोचने समय अपना प्राण भी दे देना पड़ता है। रामदास की जो शिक्षा थी, वही कार्य था। उन्होंने मनुष्य-जातिको सुखी करनेके लिए, अपने सुखको जलाञ्जलि देकर, पिपासुओंकी वेदीसे उठकर, अनाथ देशके आंसू पोंछनेके लिए, जङ्गलका रास्ता लिया। देशको सुखी करनेके लिए उन्होंने अपने सुखकी बलि दी। उनकी 'अभंगों' पर देश मोहित हो गया। मानों जेठ आषाढ़ की तपी पृथ्वीपर अमोघ वर्षा हुई। वे गाते-गाते घूमने लगे "हम सब भाई भाई, हम सब भाई बहिन" इस प्रेम गीतसे मोहित होकर आबालवृद्ध वनिता कन्धेसे कन्धा लगाकर उस विश्वप्रेमीके रोदनमें समस्वर, समहृदय और समभावसे अपनी आंखोंके जलबिन्दु बरसाने लगे। गांव-गांव और नगर-नगरसे समध्वनि उठी—"हम सब भाई भाई; हम सब

भाई बहिन" प्रेमकी लहरमें भारत-वसुन्धरा डूब गई। विन्ध्याचलसे कृष्णाके किनारे तक उस प्रेम गङ्गाकी हिलोरें उठने लगीं। उन्हीं प्रेम-हिलोरोंमेंसे एक वीर निकलकर उस दारिद्र्यव्रतीकी याचना करने लगा। जिस वीरपुरुष शिवाजीका नाम लेनेसे भारत-सन्तानमात्रको आनन्दके मारे रोमाञ्च हो आता है, उसका प्रादुर्भाव रामदासकी शान्ति का ही फल था। देश जागे, देश दुःखमुक्त हो, यही रामदासकी अविराम चिन्ता थी। एक ओर इस विश्व-प्रेमने देशमें भ्रातृभावका संचार किया और दूसरी ओर शिवाजी जैसे वीरको उसका नेतृत्व दे दिया। शिवाजी और रामदासका एक ही कार्य था। एक प्रत्यक्ष संन्यासी था, दूसरा अप्रत्यक्ष। एक संन्यास-वेशमें संन्यासी था, दूसरा राजवेशमें संन्यासी था। एक जङ्गलके पहाड़ी वृक्षके नीचे चमकदार तारोंकी ओर टकटकी बांधे "देश-दुःख दूर करो भगवान्" कहता हुआ रात बिता देता था—दूसरा महलमें कोमल शैयापर सोते हुए "देश कब स्वाधीन हो" इस चिन्तामें सवेरा कर देता था। दोनों त्यागी थे।—एक महल बन रहा था और शिवाजी उसे देख रहे थे। उस समय सैकड़ों मजदूरोंको काम करते देखकर शिवाजीके मनमें ख्याल आया कि, इन सबका भरण-पोषण मुझसे ही होता है। उसी समय रामदास आ पहुँचे। उन्होंने एक पास पड़े हुए पत्थरकी ओर इशारा करके कहा, इसके दो टुकड़े करवाओ।

उस समय कारीगरने आकर उसके दो टुकड़े कर दिये। देखा कि उस पत्थर के बीच में पोली जगह थी और उस में पानी और एक मेंढक था। रामदासने शिवाजीसे कहा,—"बतलाओ, ऐसे निर्जन स्थानमें इसका भरण-पोषण कौन करता होगा?" शिवाजीका स्वप्न मानो वायुमें मिल गया। वे समझ गये कि हम दारिद्र्यमनी हैं, उससे निश्चिन्त होना ठीक नहीं। उसी समय रामदासके चरणोंपर गिर पड़े। संसार त्यागियोंके ही पैदा किये फल क्या कहा है।

एक दूसरे अवसरपर शिवाजी अपने महलकी खिड़की में बैठे थे। उसी समय नीचेसे रामदासने आवाज़ दी। शिवाजीने उन्हें कुछ ठहरने के लिए कहा। इस थोड़ेसे अवसरमें उन्होंने एक छोटासा काग़ज़का पुर्ज़ा लिखा, उसे लिए हुए वे नीचे आये, आकर रामदासके चरणोंपर गिर पड़े और पुर्ज़ा सामने रख दिया। हाथ जोड़कर शिवाजीने कहा,—"इसे स्वीकार कीजिए।" रामदासने उसे उठाकर देखा, उसमें लिखा था कि "यह सब राज्य मैं आपको समर्पित करता हूँ।" देखकर हँसते हुए रामदासने कहा—"ठीक है, मैं पूरे अधिकार देकर इस राज्यका मन्त्री तुम्हींको बनाता हूँ और कहता हूँ कि, अपने आपको केवल मंत्री समझकर ईमानदारी से काम करना।" यह कहकर वह त्यागी हँसता हुआ जङ्गलको चला गया। शिवाजीने उसी समयसे महाराष्ट्र-राज्यका झण्डा गेरवा रङ्गका कर दिया और वे स्वयं

आयु भर मर्मोंको तरह ही काम करते रहे। संसारका इति-हास खोज डालने पर भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। धन्य विश्वप्रेमी! धन्य विश्वप्रेमी!!

भारतके एक और योगी ने भी इस दुर्बोध समस्या की प्रकृत मीमांसा करनेकी चेष्टा की थी और वह कृतकार्य भी हुआ था। जो सिक्ख जाति रणमें अजेय, दृढ़, अविचल मन जाती है—मातृप्रेम में जिस सिक्ख-जातिका हृदय स्फीत हो जाता है, कृतज्ञतामें जो अपने प्राण देनेको भी तैयार रहती है—भारत वसुन्धरा की गौरवप्राण सिक्ख-जाति उसी योगीके आत्मत्याग और स्वदेश-प्रेम की सर्वोच्च ध्वजा है। चिलियानवाला की संग्राम-भूमि में जिस सिक्ख-जातिके अपार वीरत्वके बलसे अङ्गरेज़-जाति अपने प्राणोंकी रक्षा कर सकी, अफ़ग़ानिस्तानमें जिस सिक्ख-जातिके अद्भुत रण-कौशलसे ब्रिटिश-पताका फहराई, जिस वीरदर्प सिक्ख-जातिने अपने पौरुषसे मिसरको अङ्गरेज़-जातिके कर-तल कर दिया—फ्रान्समें घुसे हुए जर्मनीको जिस सिक्ख जाति ने जान होमकर पीछे हटा दिया—वह सिक्ख-जाति त्यागी गुरु गोविन्दसिंहकी गम्भीर साधनाका फल है। जब भारत यवन-अत्याचार से हाहाकार कर रहा था, उस समय गो-विन्दसिंहका हृदय रो उठा था। उन्होंने देखा कि यह द्वेष शान्त न होकर दोनोंका ही नाश करेगा, इसी चिन्ताने उनके हृदयको हिला दिया। उन्होंने सिक्ख-जातिको एक

नवीन धर्ममें दीक्षित किया। गुरु नानकका सिक्ख धर्म केवल परलोक की ही चिन्ता में लगा रहता था, इस लोक से उसका विशेष सम्बन्ध न था, किन्तु गोविन्दसिंहने उन साधुओंको वीरव्रती बना डाला। उन्होंने घोषणा कर दी कि, इस धर्ममें हिन्दू, मुसल्मान, ब्राह्मण, शूद्र सब समान होंगे। इस धर्मसे दीक्षित होने से सब भाई-भाई होंगे, सब एक परिवार होंगे। सबसे प्रथम गुरु गोविन्दसिंह ही इस धर्ममें दीक्षित हुए। भ्रुरुक्षे कुछ हिन्दू और मुसल्मान उनके शिष्य बने। सबको अपनी छातीसे लगाकर, वे भाई कहकर सम्बोधन करने लगे। छुआछूतको स्थान न देकर, सब एक परिवारके समान होगये। सिक्ख-जातिके द्वारा भारतके दुःखोंको दूर करनेके सिवाय गोविन्दसिंहके जीवनका और कोई लक्ष्य न था। अपने सुख और अपनी सम्पत्तिकी उन्हें कभी चिन्ता नहीं हुई। उन्होंने देशके हितमें अपने स्वार्थकी बलि दी। इसीलिए सिक्ख-जाति आज भी उनके नामपर मुग्ध है और रहेगी। उनके शिष्य उनके छोटेसे हितके लिए भी सदैव प्राण देनेको तैयार रहते थे। संग्राम-भूमि में गुरु गोविन्दसिंहका नाम लेते ही सिक्ख-जातिकी भाइयोंमें अपूर्व बल आ जाता है। गुरुके अपूर्व आत्मत्याग और भ्रातृ-प्रेमपर मोहित होकर हजारों मुसल्मान बैर भूलकर उनके शिष्य बने थे। जो परस्पर शत्रु थे, वे एक दूसरेको छातीसे लगाते हुए भाई कहकर गद्‌गद होने लगे। उनके प्रेमपूर्ण

"भाई भाई" गानेपर संसार मोहित था, उनकी समवेत सेनाके विजय-दर्पसे दिल्लीका राजसिंहासन काँपता था। उस त्यागीकी सेनासे औरङ्गजेबकी सेना प्रतिपद पर हारती थी। दिल्ली का सिंहासन गिरूँ गिरूँ हो रहा था, उसी समय एक घातक के द्वारा उस त्यागीका शरीरान्त हुआ। भारत को दुख भोगना था, इसलिए उस त्यागी किन्तु विश्व-प्रेमी गुरु गोविन्दसिंहकी मृत्यु होगई। गुरु गोविन्द! फिर एक बार आकर ब्राह्मण शूद्रके भेदको अपने अगाध विश्वप्रेम में स्नान कराके पवित्र कर दो। प्रत्येक भारत-वासीकी नस-नसमें अपने भ्रातृप्रेम का सञ्चार करदो। देव! फिर एक बार स्वर्गसे उतरकर अपने भारतको नरकसे उबा-रो—फिर मरणोन्मुख भारतमें अपने आत्मत्यागकी सञ्जीवनी शक्ति प्रवाहित कर दो। वीर संन्यासीमूर्तिसे फिर अवतीर्ण होकर इन्हें दारिद्र्यव्रती बनादो। तुम्हारी आमरण साधनाका फल वही सिक्ख-जाति अब भी जीवित है, किन्तु उसमें जिस विश्वप्रेम की जीवन शक्ति तुमने फूँकी थी, वह तुम्हारे साथ ही चलीगई। तुमने जिस वीरत्वकी धारा बहाई थी, वह अब भी मौजूद है, किन्तु वह आत्मत्याग तुम्हारे साथ ही लोप हो गया।

एक त्यागीके त्यागमंत्रसे मोहित होकर लाखों त्यागी बने थे। वह त्यागकी प्रभा अनन्त अन्धकार भेदकर निकली थी और सदैव प्रकाशित रहेगी।

त्यागी मनुष्य परदुःखकातर हो जाता है। वह सदैव निर्बल का पक्ष लेता है। निर्बल अत्याचार नहीं कर सकते, वरं, वे प्रबलों को आँखें देखकर चलते हैं, फिर भी प्रबल उन पर अत्याचार करते हैं। त्यागी का हृदय उनके दुखसे विकल हो उठता है, इसलिये वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति प्रबल के बल शमनमें लगाता है। यदि प्रबल राज्य निर्बल राज्य पर मनमानीकी छूट करने लगे तो, वह त्यागी राजनातिक वेषमें गेरीबाल्डी के समान दर्शन देता है: यदि प्रबल पक्ष धर्म का नाम लेकर मनमानी करे तो वह त्यागी शाक्यसिंह, मुहम्मद, क्राइस्ट, दयानन्द का रूप धारणकर लेता है; यदि प्रबल पक्ष अफ्रिका के निग्रो लोगोंके समान दूसरों पर अत्याचार करे, तो वह त्यागी विलबरफोर्स और अब्राहम लिंकन बन जाता है। प्रत्येक दशा में वह बिना वेष वाला संन्यासी निर्बलों का पक्ष लेकर उन्हें न्याय दिलानेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है।

कई सौ वर्ष से योरुपमें गुलामीकी प्रथा चली थी। इसका अस्तित्व किसी न किसी रूपमें प्रत्येक देशमें पाया जाता है। वैसे मालोंमें निर्बल गुलामों पर तरस खाने वाले और मौखिक सहानुभूति दिखाने वाले बहुत निकल आते थे, किन्तु वास्तव में इस प्रथा का मूलोच्छेद इंगलैण्ड और अमेरिका ने ही किया। प्राचीन स्पार्टा के हैलटों की, रोम के स्लेवों को और वर्तमान दक्षिण अफ्रिकाके निग्रो लोगों की दासता की

आलोचना करनेसे पत्थर भी पसीजता है। स्वार्थ से अन्धा होकर मनुष्य कैसा निर्मम पिशाच बन सकता है, यह देखना हो तो ग़ुलामोंके स्वामियों को देख लेना भर काफ़ी है!

१४४० ई० में एन्थनी गोन्सेलेज़ नामक एक पोर्चुगीज़ कप्तान् अफ्रिकाके किनारे व्यापारके लिये गया था। वापिस आते समय वह कुछ मूरलोगोंको ले आया और उन्हें ग़ुलाम बनाया। दो वर्ष बाद युवराज हेनरी को इसकी ख़बर लगी। युवराजने कप्तान को बुलाकर आज्ञा दी कि, "उन्हें जहां से लाये हो वहीं छोड़ आओ।" आज्ञानुसार मूर लोगोंको लेकर कप्तान उनके देश छोड़ने गया। इससे प्रसन्न होकर मूरों ने उसे कुछ सुवर्ण और दश निग्रो दास उपहारमें दिये। उन निग्रो-हबशियोंको लाकर उसने ग़ुलाम बनाया। बस,यहांसे निग्रोजाति को ग़ुलामी का सोता बह चला।

जब स्पेनवालों ने अमेरिका और उसके पास वाले टापू खोज निकाले, तब वहां खानोंमें काम करने के लिये मज़दूरों की आवश्यकता हुई। उनकी नज़र अफ्रिका पर पड़ी। उन्होंने देखा कि जो अफ्रिका से दास पकड़ कर लाये जायँ तो यह काम बड़ी सुगमतासे चले। १५०२ ई० में पोर्चुगीज़ लोग स्पेन वालों को दास बेचने लगे। इस ग़ुलामीके व्यापार को अधिक लाभदायक देखकर स्वयं स्पेन वाले भी इसे करने लगे। पहले तो वे गिनि टापुओं के किनारे सोनेकी मिट्टीके लिये जाते थे पर आरम्भ उन्हें अधिक प्राप्त न हो सकी,

वे और किसी व्यापार की खोज में थे, इसी कारण उन्हें दास-व्यवसाय खोलने से भी सस्ता दीखा और वे करने लगे। धीरे-धीरे सब देशों की गवर्नमेंटों ने इसे कानून के रूप में परिणत कर दिया। जहाज़ के जहाज़ भरकर अभागे निग्रो अमेरिका भेजे जाने लगे। उन दुखियों के आर्तनाद से एटलाण्टिक समुद्र थर्राने लगा, किन्तु नर-पिशाच धर्मभ्रष्ट व्यापारी ऐसे ही पाषाण बने रहे। १५१७ ई० में सम्राट् चार्ल्स ने एक आदमी को पट्टा लिख दिया था कि, प्रति वर्ष भरमें ४००० निग्रो गुलाम हिस्पान्योला, क्यूबा, जमैका और पोर्टोरिको पहुँचा दे। इसी कारण पीछे उसे पछताना पड़ा था, किन्तु इसका फल कुछ भी न हुआ। बीज बोना सहज है, किन्तु जब वह विशाल वृक्षका आकार धारणकर लेता है, तब उसे उखाड़ना उतना आसान नहीं रहता। फ्रेञ्च-सम्राट् तेरहवें लुई ने भी ईश्वर की महिमा विस्तार और निग्रो-जातिके मङ्गल के लिये, गुलामी का व्यापार न्यायसम्मत कर दिया था। रानी एलिज़ाबेथके समयमें अँगरेज़ भी इस व्यापारको करने लगे। सबसे पहला अँगरेज़ दास-व्यवसायी सर जॉन हॉकिन्स है। रानी एलिज़ाबेथने इतना अवश्य कहा था कि, जो निग्रो दास बनना न चाहे, उसे दास न बनाया जाय। किन्तु इस बात की रक्षा किसी ने भी न की। बल्कि अँगरेज़ व्यापारियोंसे पहले तो लोग गुलाम बनाते समय उन्हें किञ्चित् राज़ी कर भी लेते थे, किन्तु इनके साथ डाकुओं की कार्रवाइयाँ

भी होने लगा। सर जॉन हॉकिन्सने असंख्य निग्रो लोगों को ज़बर्दस्ती दास बनाया। इस बल-प्रयोग का सबसे पहला श्रेय इन्हीं महात्मा को है। धीरे धीरे यह प्रथा अत्यधिक भीषण बन गई। स्टुअर्ट-वंशीय राजाओंके समय में तो प्रत्येक पश्चिमी द्वीप व्यापारिक चीज़ों के समान गुलामों की बिक्री का केन्द्र बन गया—कपड़ा और अनाज जैसी आवश्यक चीज़ों के समान गुलाम बिकने लगे।

पाठकोंको सुनकर आश्चर्य होगा कि, १७०० से १७८६ ई० तक, अकेले ब्रिटेन ने ६,१०,००० गुलाम अमेरिका के हाथ बेचे और १६८० से १७८६ ई० तक २१,३०,००० गुलाम ब्रिटिश उपनिवेशों में भेजे गये। १७७१ ई० में जब गुलामों का व्यापार अपनी हद पर पहुँच चुका था, तब एक ही वर्ष में १८२ अँगरेज़ी जहाज़ ४८,१४६ निग्रो लोगोंको गुलाम बनाकर अमेरिका लेगये थे। १७८३ ई० की रिपोर्टमें लिखा है कि, समस्त योरूपने ७४,००० निग्रो लोगोंको गुलामी की बेड़ियाँ पहनाईं और इसमें अकेले एक अँगरेज़ बहादुर ने ३८,००० गुलाम बिकने के लिये पकड़कर भेजे। जिसके हृदयमें एक कणमात्र भी दयाका होगा, जो कुछ भी मनुष्यत्व रखता होगा—क्या वह इस अत्याचार को स्मरण करके लाज से अपना मुँह न छिपावेगा? क्या मानवकुलमें ऐसा भी कोई व्यक्ति है, जो यह बात सुनकर भी अपने को मनुष्य कहे? ऊपर जो संख्या दी गई है, वह किसी की कल्पना नहीं है,

कोई मनोहर वर्णन करनेके लिये ये पृष्ठ नहीं दिये गये हैं—किन्तु यह मनुष्य-जातिके ललाट पर काला टीका है—मानवी कलङ्क की काली ध्वजा है। स्वार्थपर मनुष्य तुझे धिक्कार! सभ्य योरप तुझे धिक्!! * * *

इँगलैण्डके अमानुषी अत्याचारसे पापका घड़ा भरा देखकर कई हृदय—मानव-हृदय रो उठे। ग्रार्प, क्लार्कसन, विल्बरफोर्स, बेकस आदि ऋषि स्वदेश और स्वजातिके पाप का प्रायश्चित्त करनेको तैयार हुए। इन्होंने प्रतिज्ञा की कि, हम दास-व्यवसाय उठाकर इँगलैण्डके पापका किञ्चित् प्रायश्चित्त करेंगे। विल्बरफोर्स इस दलके नेता बने। इस मन्तव्यको पूरा करनेमें इस महात्मा को अपना समस्त जीवन बिता देना पड़ा था। ऐसे ऋषि के जीवन की कुछ बातें लिख देना अनुचित न होगा।

सन् १७५९ ई० के प्रारम्भमें, इङ्गलैण्ड के हल नगरमें इस महात्मा का जन्म हुआ। दस वर्ष की अवस्था में ही पिता का परलोकवास होगया। पिता की मृत्यु के बाद इनका लालन-पालन दादा के यत्न से हुआ। इक्कीस वर्ष की अवस्थामें कॉलिज छोड़कर ये हल नगरके प्रतिनिधि-स्वरूप पार्लिमेण्टके सभासद बने। केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें पढ़ते समय मंत्रिवर पिटसे इनकी मित्रता होगई थी। पार्लिमेण्टके काममें लगनेके बाद यह मित्रता और भी बढ़ गई। विल्बरफोर्सकी स्वाभाविक प्रतिभा और कार्यदक्षता का यहां अच्छा विकास हुआ। इनके व्याख्यान बड़े हृदयग्राही होते थे। इसी कारण

पार्लियामेण्टके 'हाउस ऑव् कामन्स'में इनका आदर दिनोंदिन बढ़ता गया। सुधार के कार्यों में ये मिनिस्टर पिट के दाहिने हाथ बन गये।

१७८७ ई० में, इस महात्मा का ध्यान तात्कालिक दास-व्यवसाय पर गया। इस समय से लगाकर मृत्यु पर्यन्त यह संन्यासी था। अपने सुख-दुःख और सौभाग्य से वह उदास था। सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते उसे सदैव यही चिन्ता थी कि, इँगलैण्ड का असभ्य कलङ्क दास-व्यवसाय किस प्रकार उठाया जाय। इँगलैण्ड के श्वेत यश में उसे दास-व्यवसाय काला धब्बा दीखता था। उसने देखा कि इस कलङ्क के रहते अँगरेजों की स्वाधीनता केवलमात्र हँसी है। असंख्य गुलामों के स्वामियोंने हजारों दास खरीद-खरीद कर उनके परिश्रमसे जो रुपया अर्जन किया है, उससे वे सम्पत्तिशाली बन बैठे हैं—अब उनकी बढ़ी हुई प्रतिष्ठा किस प्रकार रोकी जाय? रात-दिन इसी चिन्ता के मारे विल्बरफोर्स का शरीर क्षीण होने लगा। चाहे जितनी कठि-नाई हो, किन्तु उसका संकल्प एकही था। इस उद्देश को पूर्ति कैसे होगी, सो वह नहीं जानता—फिर भी इसी साधना में उसने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। अविचलित, सुदृढ़ और एकाग्रचित्तता से वह इस तपस्यामें निमग्न हुआ। इस तपस्या में उसके धैर्य, दक्षता और साहस को देखकर इँगलैण्डवासी विस्मित होगये थे। १७८८ ई० में उसने सबसे

प्रथम पार्लिमेण्टमें दास-व्यवसाय रोकनेका प्रस्ताव पेश किया। वह प्रतिवार प्रस्ताव पेश करने लगा और उस पर कुछ ध्यान न दिया जाकर वह रद्द किया जाने लगा। किन्तु इस निःस्वार्थ विल्बर्फोर्सको किसी भी प्रकार विचलित न हुआ। उसने हिमालय के समान वह आँधी के झोंके सहता हुआ अविचल खड़ा रहा। प्रति वर्ष उसके प्रस्ताव 'पागलपन का कार्य' कह कर वापिस किये जाने लगे, किन्तु उसकी अटल समाधि भङ्ग न हुई। सागरगामिनी नदी के स्थिर सङ्कल्प को संसार में आज तक विफल-मनोरथ कौन कर सका है? इस-इस वर्ष करके क्रमशः बीस वर्ष बीत गये, किन्तु वह व्रतियाग्रणी साधनासे न हटा। पार्लिमेण्टके सभासद उसका तपस्यासे आसन सहित हिल उठे। उसकी कठोर साधनासे पत्थर भी गलकर पानी बना। अबतक जो आँखें सूखी थीं, वे अब निरन्तर अश्रुधारा बहाने लगीं। महात्मा विल्बरफोर्सने रो रोकर—निरन्तर रोकर—अन्तमें पार्लिमेण्टको भी रुला दिया। अब पार्लिमेण्ट को ज्ञान हुआ कि वे कैसा गर्हणी ह्यम कर रहे हैं। दास-व्यवसायका अनुमोदन करके उन्होंने कैसा घोर पाप किया है। आज वे अपना पाप समझे और समझकर उसका उपयुक्त प्रायश्चित्त करनेको तैयार होगये। अँगरेज़ दास-व्यवसायियों के पास जितने दास थे, उन सब को पार्लिमेण्टने अपने रुपये से खरीद कर स्वाधीनता दी और भविष्यके लिये नियम बना दिया कि, कोई अँगरेज़ न दास बेचे और न ले। ऐसा पाप वैसा ही

प्रायश्चित्त देखकर संसार मोहित होगया। जातीय आत्मत्याग का ऐसा उदाहरण और कहीं मिलना कठिन है। एक बुलवरफोर्स के आत्मत्यागसे समस्त इँग्लैण्डने आत्मत्यागका पाठ पढ़ा। एक मनुष्य की कठोर तपस्यासे समस्त पार्लिमेण्ट संन्यासियों की समिति बन गई। जो जाति एक पैसा लाभ के लिये सात समुद्र पार जान होमने को तैयार थी, उसने कोटि-कोटि स्वर्णमुद्रा विसर्जन करदीं—करोड़ों की संख्यासे दास मोल लेकर उन्हें स्वाधीनता दे दी। जिस जातिने जल-स्थलमें अपनी वाणिज्य-ध्वजा फहरा दी, उसीके एक पुरुष द्वारा दासता का नाश किया गया। धन्य बुलवरफोर्स! धन्य तुम्हारा जीवन!! इस पृथ्वी को छोड़ कर तुम स्वर्ग चले गये; किन्तु तुम्हारे ओजस्वी विश्वप्रेमने अँगरेज़ जाति को देवता बना दिया।

कोई जाति यदि नीचे से ऊपर उठ सकती है—यदि दुर्गुण त्यागकर सुगुण ग्रहण कर सकती है, तो वह ऐसे आमरण साधना करने वालोंसे ही उन्नत बनती है। ऊँचे स्थान पर रहते हुए दीपक के समान, ऐसे पुरुष चारों ओर प्रकाश फैलाते हैं। बुलवरफोर्स के मनुष्य-प्रेम को हम बतला चुके, अब एक दूसरे अँगरेज़ महात्मा की कृति देखिये। इस महात्मा का नाम जॉन हावर्ड था। इससे पहले योरुप के जेलखाने साक्षात् नरक थे और जेलर यम। दिनभर पशुओं की तरह खदेड़ कर अभागे और अभागियों को कुछ भोजन देकर या भूखे ही पाताल-पुरी-सदृश तहख़ानों में बन्द कर देते थे।

उस नरकमें बिना वायु, बिना प्रकाश, अनाहार, आँसू बहाकर प्राण खोते थे। वहाँ खड़े होकर उन अभागों और अभागिनियों के दुःखपर चुपचाप आँसू बहानेवाला, यह मानव-प्रेमी कौन है? कोढ़के रोगियोंकी दुर्गन्धित शय्याके पास दिनरात बिताकर उनकी सेवा करनेवाला यह नरदेव कौन है? यह वही प्रातःस्मरणीय जॉन हावर्ड है। उन अभागे और अभागिनियोंकी गाथा इन्होंने करुण हृदयसे संसारके सामने सुनाई। जब सम्पूर्ण संसार अपराधियोंकी दुःख-यन्त्रणा में नीरव था, उस समय इन्हींका हृदय मर्मवेदना से रो उठा था। समाजने जिनका त्याग कर दिया—जो विस्मृतिके अगाध समुद्रमें जबर्दस्ती डुबो दिये गये—उन सबों पुरुषोंके आकाशभेदी रोदनोंसे जॉन हावर्ड का हृदय समस्वरमें रो उठा। जेल काटे हुए मनुष्यों को देखकर लोग सब उनसे घृणा करते थे, ऐसी दशामें वे अभागे दुःख और क्षोभसे हताश होजाते थे, विवश होकर उन्हें फिर चोर-पुरुषों में ही मिलना पड़ता था और वे ऐसा ही उद्योग करते थे, जिससे पुनः कारावासी बनें। जॉन हावर्ड प्रत्येक जेल की यह दशा देखता फिरता था। उसने केवल इङ्गलैण्ड ही नहीं, प्रत्युत समस्त योरप की जेलें देखीं। फिर उसने सब देशके कारागारवासियोंकी आलोचना की। जेलखानोंकी प्रस्तरमय उच्च दीवारोंको भेदकर जिन दीन-निरीहों की पाषाणभेदी मर्मयातना बाहर न आसकती थी, उसे जान हावर्ड प्रत्येक मुहल्ले में जाकर सुनाने लगा। समय

पाकर उसके अनुसार समस्त योरुप की जेलें सुधरीं। आज योरुप की जेलें इतनी प्रशस्त होगई हैं कि स्वास्थ्य, शिल्प, पढ़ना लिखना आदि साथही चारित्र और धार्मिक शिक्षाके लिहाज़ से भी वे बहुत उन्नत होगई हैं। तबसे दूसरी बार अपराध करने वालों की संख्या बहुतही न्यून होगई।

यह जॉन हावर्ड एक बार (१७५६ ई०) पोर्चुगीज़ जहाज़ में लिसबन जारहा था। मार्ग में फ्रेञ्च जहाज़ ने सबको क़ैद कर लिया। जॉन हावर्ड सहित और अनेक मनुष्यों को एक सप्ताह तक हवालातमें रक्खा। पहले दो दिन तो उन्हें निर्जल निराहार रहना पड़ा। सोनेके लिये घोड़ों की सड़ी हुई घास मिली। वहाँ और अनेक नगरों में बहुतसे अँगरेज़ क़ैद थे। सब की यही दशा थी। जॉन हॉवर्ड को फ्रेञ्चों की असहानुभूतिकताके और सैकड़ों प्रमाण मिले। ऐसे अत्याचारों से सैकड़ों निरपराध अँगरेज़ क़ैदी मृत्युके ग्रास बने। पाठक इसीसे अनुमान लगा सकते हैं कि, एक छोटी-सी कोठरीमें एक दिनमें छत्तीस अँगरेज़ मरे। हावर्ड का कोमल हृदय इस नृशंस व्यवहारसे विचलित होगया। एक सप्ताह बाद जब वे छोड़े गये, तब जॉन हावर्ड ने पार्लिमेण्ट में जाकर अँगरेज़ोंकी दुःख-गाथा सुनाई। उसी समय ब्रिटिश गवर्नमेण्टने फ्रेञ्च गवर्नमेण्टको बड़ी धिक्कारपूर्ण चिट्ठी लिखी। इससे लज्जित होकर फ्रेञ्च गवर्नमेण्टने अँगरेज़ क़ैदियोंको छोड़ दिया।

इसके अनन्तर जॉन हावर्ड इटली की सैर देखने गया। वहाँ की सरकारसे प्रार्थना करके बहुतसे सुधार करवाये। इटलीसे लौटकर उसने अपना दूसरा विवाह किया। यह स्त्री अपनी पहली कन्याके प्रसवकालमें ही मर गई। कन्या भी बड़ी होकर उन्माद रोग से पीड़ित होगई। गृहस्थी के सुख से हावर्ड को उदासी आगई। इस समयमें वह बेडफोर्ड नगरके निकट अपनी ज़मींदारी में रहने लगा। उसके इस समय से बादके जीवनका विशेष महत्व है।

१७७३ ई० में वह बेडफोर्ड नगर के मुखिया के पद पर अभिषिक्त हुआ। बेडफोर्ड के कारावासियों के दुःख पर सबसे पहले उसका ध्यान गया। उसे देखकर उसके ध्यानमें यह आया था कि, बेडफोर्ड के समान और स्थान तो नरक में भी न होगा। इसके बाद उसने ब्रिटेन, आयर्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड की जेलें देखीं। वह जितना ही अधिक देखने लगा, उतना ही अधिक मर्मभेदी घटनाओं से परिचित होने लगा। उसने सब दशाएँ आँखों देखी थीं। वह कहता था कि ब्रिटेन के सब कारागार निर्लज्जताके गह्वर और पापके अग्नि-कुण्ड हैं। उनमें जाने वाले अभागों के शरीर स्वास्थ्यहीन और नीति कलङ्कित होकर ही उनका पीछा नहीं छूटता; किन्तु वे ऐसे दुर्दान्त जीवनमें रक्खे जाते हैं कि, बाहर निकल कर सम्पूर्ण समाजको संक्रामक रोग की तरह बुराइयों का केन्द्र बना सकते हैं। हावर्ड ने इन्हीं सब बातों को गौर

पार्लिमेण्टका ध्यान आकर्षित किया। उसके मानवप्रेम और इँगलैण्ड देश के मुख उज्ज्वल करने को पार्लिमेण्टने धन्यवाद दिया।

उस समय जेलखानों को अतिशय दुर्दशा के कारण एक प्रकारका संक्रामक ज्वर पैदा हुआ था। इसे कारा-ज्वर कहते थे। घातकों के हाथ से जितने कारावासी नहीं मरते थे, उनसे भी कहीं अधिक अभागे इस ज्वर का ग्रास बनते थे। केवल कारावासी ही नहीं, वह ज्वर ऐसा संक्रामक था कि जज, मैजिस्ट्रेट, जूरी, साक्षी, जेलदारोग़ा आदि जिन लोगोंको कारावासियोंसे मिलना पड़ता था, वे सब इस संक्रामक ज्वर से आक्रान्त होकर अकाल ही में काल के ग्रास बनते थे। जेलख़ानोंमें फौजदारी और दीवानी के क़ैदी एक साथ रहते थे—घोर दुर्दान्त दस्यु, मनुष्य-घातक डाकू चोर, और सब प्रकार से ईमान्दार किन्तु क़र्ज़ न चुका सकनेके कारण बन्दी बना हुआ मनुष्य, एक साथ और एक समान रक्खे जाते थे। ऐसे मनुष्य भी उन विकट अपराधियों के साथ रक्खे जाते थे, जो अदालतमें बरी हो चुके थे; किन्तु कोर्ट को शुल्क न दे सकने के कारण बन्दी बनाये गये थे। यह सब देखकर उसके मनमें हो आया कि, "ये सब जेलखाने मनुष्य को अपराधमुक्त नहीं करते, किन्तु अपराधोंकी नई सृष्टि रच रहे हैं। इनके द्वारा समाज को जितनी हानि होरही है, उतनी और किसी प्रकार से नहीं होती। एक अपराधी जेलखानेमें

जाते समय अपने साथ जितना पाप ले जाता है, उसकी अपेक्षा सौ गुना अधिक पाप वह अपने साथ वहाँ से वापिस ले आता है। इसलिये जेलखानोंसे समाजका जितना लाभ होता है, उससे कई गुणो अधिक हानि होती है।"

इन अभागों के दुःख से हावर्ड का हृदय फट गया। उसकी सम्पूर्ण मानसिक शक्ति सम्पूर्ण सम्पत्ति और उसके पद का समस्त प्रभाव सब हतभाग्य कारावासी नर नारियोंके दुःखमोचन में लगा। वह समाज को मनुष्यत्वपूर्ण बनाने में कृतसंकल्प था। सोना-बैठना, खाना-पीना, विश्राम-आराम भूलकर वह हृदय के अदम्य उत्साह से इस कार्य में लगा। उसके उद्दीपन से गवर्नमेण्ट भी उत्तेजित होगई। उसकी इच्छा बहुत कुछ सफल हुई। उसके कहनेसे कई जेलखाने तोड़कर फिर से बनाये गये। बहुत जेलखानों में भोजन की व्यवस्था ठीक हुई। हर एक जेलकी कोठरी में धर्म-पुस्तक बाइबिल रक्खी गई। कारावासियों के धार्मिक भाव जगाने के लिये प्रति सप्ताह एक-एक धार्मिक व्याख्यान होने लगा।

स्वदेशमें कृतकार्यता लाभ करके वह मानव प्रेमी चुप नहीं बैठा—और आगे बढ़ा। अब उसने समस्त योरप के जेलखानों को देखना और उनका सुधार करना निश्चित किया। इसी उद्देश्यसे हॉवर्ड फ्रान्स, फ्लैण्डर्स, हालैण्ड, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड, प्रशिया, आस्ट्रिया, डेनमार्क, स्वीडन, रशिया, पोलैण्ड, स्पेन और पुर्तगालमें क्रमशः गया इटली वह १७वीं बो

आया था, इसलिये इस बार हटली न गया। इस नरवीर ने प्रत्येक स्थान पर कारावासियों के स्वास्थ्य और चारित्र को सुधरवाया। समस्त योरुप के इस सुधार का श्रेय अकेले इसी मानवप्रेमी को है। यह कहीं पैदल, कहीं नाव पर, कहीं सवारी पर योरुप भरमें घूमा। अपना सब धन और अपनी सब शक्ति उसने इसी महाव्रत की सिद्धिमें बलि दी। रास्तेमें जाते समय वह प्रकृति की शोभा पर ध्यान नहीं देता था, बड़े-बड़े नगरोंमें जाकर वह वहाँ के उद्यान और राजप्रासाद नहीं देखता था—उसे केवल उन दुःखियों की चिन्ता थी। उसका तीर्थस्थान अवरुद्ध निर्मम पूतवर्जित कारागार था। वहाँ चोर, डाकू, बदमाश उसके आराध्य थे। वह उन्हें धन देकर, उपदेश देकर, मीठी-मीठी बातें कहकर, उन्हींकी दशा पर आँसू बहा कर, उन्हें ईश्वर पर विश्वास करा कर, उनका मित्र बन जाता था। यह अनन्त विश्व उस विश्वप्रेमी का घर था। वह सब दशाओं और सब जातियों से प्रेम करता था। विशेष-कर, जिन कारावासियोंके दुखोंको कोई भी नहीं जानता था, उन्हें वह भाई बहिन के समान प्यार करता था। अपनी अतुल सम्पत्ति खर्च करके वह भिखारी बन गया था, किन्तु अपने व्रत से एक क्षण के लिये भी वह विचलित न हुआ।

दूसरी ओर उसने नज़र उठा कर देखा कि, कारावासियों को तरह कोढ़ के रोगियों की भी कोई खबर नहीं लेता। चिकित्सालयों में उनके लिये स्थान नहीं, धनिकों के गृहों में

उन्हें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं। किन्तु जिनको ओर कोई नज़र उठाकर नहीं देखता और जिनकी बात कोई नहीं सुनता—हावर्ड की आँखें उन्हें ही देखती हैं और उसके कान उन्हीं की दीन वाणी सुननेके लिये खुले हैं। इसी उद्देशसे वह इँगलैण्ड, फ्रान्स, इटली—सुदूर रूमा और कुस्तुन्तुनिया तक घूमा। बड़े-बड़े डाक्टरों से मिलकर उसने कोढ़ की अव्यर्थ औषधियाँ लीं और हज़ारों मील पैदल रास्ता चलकर वह गलित-अङ्ग रोगियों के पास गया और उन्हें औषधि खिलाकर शुश्रूषा करने लगा। रोगी के सिरहाने बैठकर वह उसकी समवेदना में रात-दिन बिता देता था। निरन्तर कोढ़ के रोगियों में रहने के कारण वह कुस्तुन्तुनियामें संक्रामक ज्वर से आक्रान्त हुआ। बड़ी कठिनाई से वह इस व्याधि से बचा, किन्तु उसने अपना संकल्प न त्यागा। वापिस इँग्लैण्ड जाकर उसने अपने परिदर्शन की एक पुस्तक लिखी, जिसे पढ़कर पत्थर भी मोम बन जाता है।

एक बार संक्रामक रोग से मरणोन्मुख होकर भी हावर्ड अपने व्रत से विमुख न हुआ। जो आत्मा विश्वप्रेमसे मोहित होगई है, वह मृत्युके भय से कब पीछे लौटी है? १७८८ ई० में, फिर इँग्लैण्ड त्याग करके ऋषि हावर्ड पूरब की ओर चला। संन्यासी काले समुद्र के तीरवर्ती खार्सन नगरमें आ पहुँचा। इस बार उसकी जीवनलीला समाप्ति की ओर आचुकी थी। अनाहार, अनिद्रा, श्रान्तिश्रम और ऋतुविपर्यय

से उसकी शरीर-यष्टि टूट चुकी थी। इस बार रोगियों को देखते-देखते सहसा फिर संक्रामक ज्वर का ग्रास बना। इस बार कुछ घण्टोंमें ही वह दुरन्त व्याधि उसे इस धराधामसे उठा लेगई। वहाँ एक फ्रेंच सज्जनने उसकी शुश्रूषा की थी। हावर्ड का शरीर उसी फ्रेंच के उद्यानमें समाधिस्थ किया गया। मिट्टी से बना हुआ शरीर मिट्टी में मिल गया,—किन्तु कीर्ति अमर है, हावर्ड की कीर्ति अनन्तकाल के लिये रह गई। कौन जानता था कि एक भारतीय युवक आज उस महा-पुरुष का कीर्तिगान करेगा? कौन जानता था—आज देव हावर्ड के लिये लिखते समय इस युवक के आँसू टपक पड़ेंगे? कहाँ मैं और कहाँ वह? किन्तु आज कौनसी अलौकिक शक्ति उसे प्रत्यक्ष दिखा रही है? कौन कहता है कि हावर्ड मर गया? सचमुच यदि वह मर गया होता, तो उसकी गाथा आज हृदय पर सजीव आघात न करती।

और एक मानव-प्रेमी संन्यासी का उल्लेख करूँगा, जिसके कारण अँगरेज़-जाति सभ्य संसारमें सिर ऊँचा करने योग्य बनी। जो अँगरेज़-जाति आज इतनी सभ्य दीख रही है, उसकी क़ानून की किताब उन्नीसवीं शताब्दी तक ऐसी नृशंस थी कि, यदि उसे भारतवासी देख पाते तो उन्हें राक्षस कहते। भारतवर्षमें उस राक्षसी अत्याचार का नमूना अँगरेज़ जाति के द्वारा महाराज नन्दकुमारदेव का प्राणवध है। उस राक्षसी क़ानून से दूध-पीता बच्चा भी मुक्त नहीं हो सकता

था। चञ्चल बालक यदि किसीका फूल तोड़ लेता, तो उसे जेल की सज़ा होती थी। फांसी का खंभा सदैव प्राणहरण करते-करते काला पड़ गया था।

अँगरेज़ जजों की तृप्ति केवल फांसी से ही न होती थी। अनेक बार अपराधी को घोड़े के पैरों से बाँधकर घोड़ा तेज़ी से भीलों भगाया जाता था—इस अभागे का शरीर लहू-लुहान होकर हाथ, पैर, सिर चूर-चूर हो जाते थे। कभी-कभी उसका सिर धीरे-धीरे काटनेकी आज्ञा होती थी। कभी-कभी अपराधी के हाथ पैर काटकर उसे अग्निज्वालामें फेंकने का आदेश होता था। इससे भी अधिक भयानक यह था कि, जीते आदमीका पेट चीर करउसकी आंतें बाहर निकाल ली जाती थीं। बहुत बार जज आज्ञा देते थे कि, अपराधी को पेड़ या खंभे के बाँधकर पत्थर मारते हुए उसके प्राण लिये जायँ। कभी-कभी अभागेके लिये आज्ञा निकलती थी कि, उसे बेत मारते-मारते स्यूगेट से टाइबरन लेजाओ और टाय-बरन से फिर न्यूगेट लाओ—इस प्रकार उसके प्राणसंहार किये जाते थे। हाथ पैरों को खाक मोचे हुए लहू-लुहान अपराधी को देखकर भी पाषाणहृदय जजों को दया न आती थी। उन्नीसवीं शताब्दी में इंगलैण्ड का यह हाल था। राक्षस राजाके राक्षस विचारक थे और उनके राक्षसी विचारसे राक्षसीको शान्ति थी।

अँगरेज़ भी आज इस विषयमें सभ्य बने हैं, तो इस बर

सामुएल रोमिली के आत्मोत्सर्ग से। उस असभ्यता के चिन्ह-स्वरूप फाँसी और बेत आज भी अवशिष्ट हैं—अँगरेज़ों की दण्ड-विधि आज भी इससे कलङ्कित है। उस नृशंस बर्बरता से छुड़ाने के लिये ही सर रोमिली का जन्म हुआ था। उसने अपने परिमार्जित मन और उदार हृदय से आजन्म इस महा-व्रत की साधना की। बचपन से ही उसे निष्ठुरता के प्रति बड़ी घृणा थी। हम उसीके शब्दोंमें उसकी बात कहते है,—"फाँसी या और कोई नृशंस अत्याचार की बात पढ़कर मेरा हृदय भयानक आतङ्क से सिहर उठता था। न्यूगेट जेल के बहुत से अभागे जीते आगमें जलाये गये, उनका विवरण पढ़-कर मैं कई रात भय के मारे नींद न ले सका—नींद आने पर उन्हीं भयानक सपनोंसे मैं उठ बैठता था। कल्पना मेरे सामने फाँसी का खम्भा, नरहत्या, रक्ताक्त कलेवर, अर्द्धदग्ध "त्राहिमाँ त्राहिमाँ" पुकारते हुए मनुष्य खड़े कर देती। यह सब देखते हुए मैं खाटमें चादर से अपना मुँह छिपा लेता। रात्रि के घोर अन्धकार की ओर देखते हुए मुझे भय होता, किन्तु स्वप्न से बचने के लिये डर के मारे नींद न लेता। इसी कारण प्रति सन्ध्या समय मैं परमात्मा की उपासना करता कि, निद्रा में मुझे स्वप्न न आवें।" राक्षसी चित्र का यह कैसा भयानक दृश्य है!!

इस बर्बरता ध्वंस करने वाले महात्मा रोमिलीके जीवन के विषय में कुछ शब्द लिख देना अनुचित न होगा रोमिली

के पिता जाति के फ्रेंच और ईसाई धर्म की प्रोटेस्टेण्ट शाखा के श्रद्धालु थे। वहाँ की गवर्नमेण्ट कैथोलिक सम्प्रदाय की श्रद्धालु थी, इसलिये भिन्न शाखावालों पर वहाँ अत्याचार होता था। रोमिली के पिता गवर्नमेण्ट के अत्याचार से पीड़ित होकर लण्डनमें आबसे। लण्डन-वासिनी एक फ्रेंच रमणी से ही उन्होंने विवाह कर लिया। इनके कई सन्तान हुईं, किन्तु दीर्घजीवी तीन ही हुईं। इन तीनों में सामुएल सब से छोटा था। एक फ्रेंच रमणी उनकी प्रथम शिक्षिका नियत हुई। वह भी धार्मिक निपीड़नसे स्वदेश छोड़ यहाँ आबसी थी। सामुएलमें धर्मपरायणता और परदुःख-कातरता आदि गुण इसी दयामयी शिक्षिका से आये।

अवस्था बढ़ने पर रोमिली स्कूल में बैठाया गया। स्कूलके शिक्षक पढ़ाने में अपटु, किन्तु बेत मारने में सिद्धहस्त थे। उस समय इङ्गलैण्डके सब स्कूलोंका यही हाल था। रोमिली तीक्ष्ण-बुद्धि बालक था, किन्तु उसे शिक्षकों की अकारण लमाचेबाजी से तङ्ग आकर थोड़ी अँगरेज़ी भाषा पर सन्तोष करते हुए स्कूल से विदा लेनी पड़ी। उसके पिता जौहरी का व्यापार करते थे। स्कूल छोड़ने के बाद पिताने उसे अपने हिसाब-किताब में लगा लिया। हिसाब-किताब करने के अनन्तर उसे बहुत समय फालतू मिलता था। इस समय में उसने स्वाधीन-भावसे ग्रीक और लैटिन भाषाएँ सीखीं। दो तीन वर्ष इस ही प्रकार बीते। इस अवसर पर एक आत्मीय की मृत्यु

से इसे डेढ़ लाख रुपये मिले। इस अनिश्चित धनागम से प्रसन्न होकर उसके पिता ने उसे व्यवहारोपयोगी जीवनमें डालना निश्चित किया। तदनुसार रोमिली कानून-कक्षामें प्रविष्ट हुआ और यथासमय बेरिस्टर बनकर अपना व्यवसाय करने लगा।

बेरिस्टरी के व्यवसायमें प्राधान्य लाभ करते हुए रोमिली को अधिक समय लगा। दण्ड-विधिके संस्कारमें अपनी मत-संकल्पना को उसने एक दिन भी न छिपाया। जिन दीवानी और फौजदारी कानूनों की दुहाई देकर नित्य फ़ैसले लिखे जाते, उन्हें रोमिली संशोधन-योग्य कहते हुए ज़रा भी न डरता था। यद्यपि इससे उसके व्यवसायमें हानि पहुँचती थी, बड़े-बड़े धनी उससे रुष्ट होजाते थे—किन्तु समय पाकर उसकी प्रतिभा इतनी प्रखर होगई कि, अनेक विघ्नों के रहते हुए भी उसका मार्ग सरल बना। क्रमशः उसका नाम अधिकसे अधिक विख्यात हो गया। इसी समय उसने मिस गर्बेट नाम्नी एक युवती से विवाह किया।

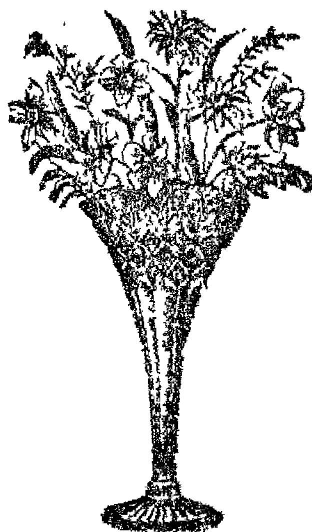
विवाह के आठ वर्ष बाद रोमिली को सॉलिसिटर जनरल का पद मिला। इसी समय वह 'कीन्सबरा' की ओर से प्रतिनिधि चुना जाकर पार्लिमेण्टके 'हाउस ऑव् कामन्स' में प्रविष्ट हुआ। यहींसे उसका जातीय जीवन प्रारम्भ होता है। साधारण जीवन से क्रमशः उच्च जीवनमें जाकर भी वह अपने निश्चित उद्देश्य को न भूला। पार्लिमेण्टके प्रति अधि-

विभागमें वह क़ानून के संशोधन की प्राणपण से चेष्टा करने लगा। उसकी अनर्गल व्याख्यानशक्ति, सत्यता, न्याय और मनुष्यता इस चेष्टामें निरन्तर व्यय होने लगी। उसे आत्मीय स्वजनोंके आदर का सुख मिला था, पतिप्राणा भार्या के प्रेम से वह सुखी था, सन्तान पर उसका पूर्ण वात्सल्य था, लोग उस पर भक्ति और श्रद्धा करते थे—फिर भी रोमिली की अन्तरात्मा सुखी न थी। स्वयं सौभाग्य-सूर्य के प्रकाशमें बैठकर भी, दुर्भाग्य के अँधेरे में बैठने वालों को वह न भूला। वह जानता था कि, जिस समय को वह आनन्द में बिता रहा है, उसी समयमें सैकड़ों यन्त्रणासे छटपटा कर मृतप्राय हो रहे हैं। इसीलिये प्रत्येक प्रसन्नताके अवसर पर उसके मनमें विषादकी काली रेखा खिंच जाती थी। इसी कारण सम्पूर्ण जाति का दुःख-बन्धन छिन्न करनेके लिये उसने अपनी यावत् शक्ति लगादी थी। यद्यपि अपने जीवनमें वह अपनी चेष्टा का फल न देख सका, किन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसका भगीरथ-प्रयत्न निष्फल नहीं हुआ। उसके आशामय व्याख्यानों से पत्थर भी पिघलने लगे। उसके शब्दोंकी मोहिनी शक्ति से अँगरेज़-जातिके लोहेके हृदय भी विचलित हुए। पार्लमेण्टमें इस विषय पर घोर आन्दोलन प्रारम्भ होगया।

फल-सिद्धिके निकट आकर सहसा उनकी पत्नी का शरीरान्त होगया (१८१८ ई०)। दोनों का जीवन एक ही सूत्रमें ग्रथित था। रोमिली का हृदय कितना प्रेमपूर्ण था, यह

उसकी डायरी की एक ही पंक्ति से प्रकट होता है, पाठक उसे समझें। "८ अक्टूबर—आज स्त्री के कुछ स्वस्थ होने से कितने दिनके बाद सोया।" किन्तु फिर उसके भाग्यमें अधिक सुखसे सोना न बदा था। स्त्री की पीड़ा क्रमश: बढ़ गई। २० अक्टूबरको वह इह लीला समाप्त कर परलोक प्रयाण कर गई। शोक से रोमिली चिन्त होगया। शोक के आघातने उसके मस्तिष्क के सूक्ष्म तन्तुओं को छिन्न-भिन्न कर डाला। जो जीवन मनुष्य-जाति की व्यथासे सदैव दुःखी था, आज मनकी असह्य वेदना से स्वयं रोमिलीने उसका उपसंहार कर दिया। सिरमें बन्दूक मार कर रोमिली इस पाप-ताप-दग्धा वसुन्धरा से विदा होगया। धन्य रोमिली! धन्य वीर! धन्य तेरा मनुष्य-प्रेम! धन्य तेरा पत्नीप्रेम! भारतके इतिहासमें हमने सती के सहमरण की कथा पढ़ी है—किन्तु पुरुष होकर सह-मरण करते नहीं सुना—पुरुष-जातिके उस कलङ्क को तुमने प्राण देकर दूर किया। आजीवन तुमने जिस व्रत का अनु-ष्ठान किया, उसका उद्यापन न देख सके! किन्तु, तुम्हारी तपस्या के फल से अँगरेज़-जाति घोर पाप से मुक्त हो गई। तुम्हारे पुण्यसे आज अँगरेज़ सभ्य कहाते हैं। मृत्यु के अनन्तर तुम्हारी साधना सफल हुई। अँगरेज़ी दण्ड-विधानमें डेढ़ सौ धाराएँ प्राणदण्ड की थीं। वे तुम्हारी मृत्यु के अनन्तर हटाई गईं। दो एक अब भी शेष हैं, किन्तु तुम्हारे तपोमा-हात्म्य से वे भी किसी न किसी दिन हटेंगी। तुमने जिस

लक्ष्य-साधन के लिये धन-प्राण की आहुति दी थी—आज स्वर्ग से उतर कर देखलो, वह सिद्ध होगया। फिर लौट कर उसी पार्लिमेण्टके आसन पर बैठे हुए अपनी हृदयभेदिनी वक्तृता से पाषाण पिघला कर अँगरेज़ी दण्ड-विधि के दो एक कलङ्क और दूर कर दो।



तीसरा अध्याय ।



सत्याग्रह ।

“स्थूलादिसम्बन्धवतोऽभिमानिनः
सुखं च दुःखं च शुभाशुभे च ।
विध्वस्तबन्धस्य सदात्मनो मुनेः
कुतः शुभं वाप्यशुभं फलं वा ।”

“जिनका सम्बन्ध ऊपर की मोटी चीज़ों से होता है, उन्हीं के मार्ग में सुख-दुःख और शुभ-अशुभ बाधक बनते हैं—उन्हें ही अभिमान आदि दुर्गुण अपने चंगुलमें फँसाते हैं। किन्तु जिस मुनि ने ऊपरी पदार्थों के बन्धन को तोड़ डाला, उसके लिये शुभ और अशुभ कुछ है ही नहीं—वही सर्वोच्च आदर्श है।”

उन्नतिशील मन गतिशील है। वह कभी स्थिर नहीं रह सकता। वह क्रमशः आगे बढ़ता है और आगे बढ़ता हुआ अपने कार्यकी परिधि भी बढ़ा लेता है। अपनेसे परिवार, परिवारसे आत्मीय स्वजन आत्मीय स्वजनोंसे स्वदेश और स्वजाति स्वदेश

और स्वजाति से समस्त पृथ्वी की मानव-जाति, मानव-जाति से प्राणि-जगत्—क्रमशः उसके प्रेमका विषय बनते हैं । प्राणि-जगत् तक केवल शाक्यसिंह और महावीर स्वामी आदि आर्य-ऋषि पहुँच सके थे,—"मा हिंस्यात् सर्व्वा भूतानि" का मन्त्र-स्वर सिवा भारत के सिवाय और कोई नहीं दे सका । हाँ, मानव-जातिके प्रेम की शिक्षा अनेक देशोंने दी है । इस शिक्षामें पाश्चात्य संसार इँगलैण्ड का ऋणी है । क्योंकि इँगलैण्ड में स्वदेश-प्रेम और स्वजाति-प्रेमके अनेक महान् कार्य हुए हैं । इँगलैण्ड व्यक्तिगत और जातिगत स्वाधीनता का आदर्श शिक्षक है । इँगलैण्ड योरप और अमेरिकाको राजनीतिक शिक्षा का गुरु है । इँगलैण्ड के कुछ मानव-प्रेमियों का वर्णन हम पीछे कर चुके हैं—अब यह वर्णन करेंगे कि सत्याग्रह के महत् यज्ञमें किसने आत्माकी आहुति प्रदान की । सचमुच, सत्यकी अग्निमें जो आत्माएँ पवित्र हुई हैं वे बड़ी विशाल, बड़ी महत्वपूर्ण हैं । सत्याग्राहीकी जीवन का व्रत देवताओं के पालन करने योग्य है । असत्य का आश्रय लेकर संसार रोषकषायदोष नेत्रों से जिसे वायु-मण्डल में मिला देना चाहता है, जिसे सब दुःखी करते हैं—उस स्वार्थके समुद्र को वह अपनी छोटीसी नाव से पार करता है । आलोकमय सत्य का आश्रय लेकर वह देव-पूज्य बन जाता है । जिसे सब दुःखी कर रहे हैं मैं उसीका साथ करूँगा, जिसे सब निकालते हैं उसे मैं आश्रय दूँगा,

जो कष्ट भोग रहा है उसके कष्ट निवारण करूँगा, जो शोकमें डूब रहा है उसे सान्त्वना देकर उसके आँसू पोछूँगा, जो असहाय है उसका सहायक बनूँगा, जो गिर रहा है उसे बाँह पकड़ कर खड़ा कर दूँगा, जो दुर्बल है उसका बल बढ़ाऊँगा, जो जाति पददलित हो रही है उसका बल बढ़ाऊँगा—जो महापुरुष देश, जाति, वर्ण, धर्म आदि सब भेदों को भूलकर सबके साथ कार्य कर सकता है, वह देवता का भी देवता है। ऐसा सत्य की ज्वलन्तमूर्ति पुरुष पूज्य का भी पूज्य और आदर्शका भी आदर्श है। जैसे पारिवारिक प्रेम स्वदेशप्रेम का एक छोटासा अंशांश है, वैसे ही स्वदेश-प्रेम सम्पूर्ण मानवप्रेम का एक अंश है। और सम्पूर्ण मानवप्रेम सत्यके प्रेमकी एक कोर है। हाँ, एक की सिद्धिके बिना दूसरी का सिद्ध होना असम्भव है; जो मानव-प्रेमी नहीं, वह सत्याग्राही नहीं बन सकता—जो सत्याग्रही होता है वह मानवप्रेमी होताही है। हम इस स्थान पर इंग्लैण्ड के एक वीर का उल्लेख करेंगे। उसका नाम जॉन हॉमडेन था। उस सत्यमूर्तिकी जो उज्ज्वल पाषाण-प्रतिमा लण्डन में स्मारक के रूपमें प्रतिष्ठित है, उसके नीचे सारांश रूप से यह लिखा है कि—

"१५९७ ई० में, इस महापुरुष का जन्म लण्डन नगर में हुआ। जब प्रथम चार्ल्स के असीम अत्याचार से ग्रेट ब्रिटेन आँधी से समुद्र की तरह आलोड़ित होरहा था तब किसीमें

उसके नीति-विरुद्ध कार्यों के प्रतिवाद करने का साहस न था, उस समय यह राजनीतिक संन्यासी स्वाधीनता की रक्षा के लिये कमर कसकर खड़ा हुआ। चार्ल्स सबसे मनमाने रुपये उधार लेने लगा। सब सिर झुका कर उसके अन्याय आग्रह को पूर्ण करने लगे। किन्तु जॉन हॉमडेनने प्रतिज्ञा की कि, शरीरमें प्राण रहते वह अन्यायमूलक ऋण न देगा। उस समय यह 'हाउस आव् कामन्स' का एक प्रतिभाशाली सभ्य था। इसने स्पष्ट शब्दोंमें चार्ल्सको कह दिया कि, प्रजा से इस प्रकार रुपये उधार लेना 'मैग्नाचार्टा' की सनदके विरुद्ध है। इससे उन्मत्त चार्ल्सके क्रोधकी सीमा न रही। "इतनी बड़ी स्पर्धा! एक सामान्य प्रजा होकर राजाके कार्यका प्रतिवाद करे! 'मैग्नाचार्टा' का नाम लेकर उसकी स्वच्छन्द गति रोके! ऐसे पाप—ऐसे दुराचार का एकमात्र स्थान कारागार—और भूषण एकमात्र हथकड़ियाँ, बेड़ियाँ और ज़ञ्जीरें हैं।" यह कहकर मदमत्त राजा चार्ल्सने जॉन हॉमडेन को जेलखानेमें डाल दिया। कुछ समय तक यह महात्मा जेलमें पड़ा रहा, किन्तु जब इसके विरुद्ध कोई भी प्रमाण किसी प्रकारसे भी न जुट सका, तब यह विवश होकर छोड़ दिया गया।

स्वाधीनता!—अन्याय-अत्याचार को उठाकर शुद्ध, मुक्त, प्रेममय स्वाधीनताकी गङ्गामें स्नान करना, कितना श्रवण-सुखद,—कितना नयनरञ्जक—कितना हृदयआह्लादकारक

है। वह शब्द सोनेकी गिन्नी के शब्द से भी अधिक मधुर है—वह दृश्य शीतकालके पूर्ण चन्द्रमाकी स्वच्छ चाँदनीसे भी अधिक मनोरम है—वह वायु मलयानिल से भी अधिक तृप्तिकर है। जॉन हॉम्पडेनके निकट बहुमूल्य हीरोंसे भी अधिक स्वाधीनता का मूल्य था। वह केवल अपनी स्वाधीनता चाहनेवाला पुरुष न था। वह चाहता था,—सम्पूर्ण जातिकी स्वाधीनता—धर्म, नीति, राजनीति, समाज, आय-व्यय, कर आदि के निश्चित करनेमें सम्पूर्ण देशकी स्वाधीनता। इस बड़ी भारी स्वाधीनताके लिये स्वयं वह जेलमें डाला गया—किन्तु, उसका उद्देश एक ही था। इस स्वाधीनताके लिये समय पर वह युद्ध करने और प्राण देनेको भी प्रस्तुत था।

अभागे चार्ल्सने यह न समझा कि, अब महती प्रजाकी शक्ति जाग उठी है; इस भावको न समझ सकने के ही कारण वह जातीय भाव की विशाल धाराके प्रतिकूल खड़ा हुआ। उसने यह न सोचा कि सौ वर्ष पहले आठवें हेनरी ने जो कुछ कर डाला था, उसे एक शताब्दी पीछे फिर करनेमें अपने मुँहकी खानी पड़ेगी। उसके ध्यानमें यह न आया कि, प्रजारूपी विशाल महासागर में राजा एक छोटीसी पुरानी नाव है—यदि वह नाव क्षुब्ध समुद्र के प्रतिकूल चलाई जायगी, तो शतधा छिन्न-भिन्न होकर रसातलमें बैठ जायगी। कुछ भी आगा-पीछा न सोच कर, राजा चार्ल्स

मदमत्त होकर अपनी मनमानी चाल चलने लगा। इस समय राजाके सामने स्पष्ट शब्दोंमें सच्ची बात कहनेवाला सम्पूर्ण इङ्गलैण्डमें अकेला जान हॉमडेन ही था। मदमत्त राजाके प्रकोपसे लाखों-करोड़ों दीन-दुखियोंकी दुर्दशा देखकर जॉन हॉमडेनकी आंखोंसे आगकी चिनगारियां निकलने लगीं। उसका ललाट रोषकषायप्रदीप्त वह्निके समान रक्ताकार बन गया। उसकी सुतीक्ष्ण दृष्टिसे भविष्य गगनमंडल काले मेघोंसे घिरा दीखा। उसने देखा कि राजा चार्ल्स यदि इसी प्रकार चलता रहा, तो अवश्य-अवश्य प्रजारूपी भयानक पर्वतसे उसका सिर टकरावेगा—यह समझकर उसने राजाको उसका कर्त्तव्य समझाया—कहा कि राजा जो काम कर रहा है, वह सेच्छाचारितासे सर्वथा प्रतिकूल है। यद्यपि हॉमडेन जातीय स्वाधीनताके लिए सब कुछ करनेको तैयार था, किन्तु राजाका भविष्य सोचकर उसका दयामय हृदय रो उठता था। राजा और प्रजा दोनोंकी कुशलके लिए वह परमात्मासे प्रार्थना करता था—"भगवन! तुम मेरी जन्मभूमिकी रक्षापातसे बचाओ। हमारे राजाको उसकी गलती सुझादो। उसके मन्त्रियोंको उस भ्रान्तमार्गसे निवारण करो।" किन्तु, उसकी यह प्रार्थना परमात्माने पूर्ण न की। हाँ, इससे उसके चरित्रकी पवित्रता और निर्मलता अवश्य स्पष्ट होती है। उस समयकी राजनीतिक दलने भी उसके विरुद्ध कुछ कहनेका साहस न किया। विनीत, साहसी, विद्वान, व्याख्यानदाता,

एकाग्रचित्त, उदारचरित हॉमडेन सबकी श्रद्धाका पात्र था।

विवश होकर राजाके प्रति अस्त्रधारण करना होगा, यह सोचकर हॉमडेन बहुतही कातर हुआ। किन्तु उसने अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे यह भी देख लिया कि, बिना शस्त्र उठाये अब यह अन्याय और किसी प्रकार मिट भी नहीं सकता—शस्त्रधारण करना अनिवार्य है। जातीय स्वाधीनता रखनेके लिए अब राज-शक्ति अपरिहार्य है।

इधर राजाको रुपयेकी अत्यधिक आवश्यकता हुई। राज-कोष सूना पड़ा था और पार्लियेमण्ट देनेसे साफ इनकार करती थी। इससे राजा क्रोधके मारे उन्मत्त हो उठा। पहले जब इङ्गलैण्डके किनारे पर कुछ बाहरी जातियाँ लूटपाट करती थीं, तब नियमानुसार राजा कुल लड़ाईके जहाज़ तैयार करनेका खर्च प्रजासे लेता था। इसे 'शिपमनी' या जहाज़-कर कहते थे। जब बाहरी जातियों का अत्याचार शुरू होता, तभी यह कर लिया जाता था। इस करको पार्लिमेण्टसे बिना पूछे ही राजा लगा सकता था। १६२४ ई० की २० वीं अक्टूबरको हठात् राजाज्ञा प्रचारित हुई कि, १ली नवम्बर तक सात लड़ाईके जंगी जहाज़ और उनके कर्मचारियोंका छै मासका वेतन राजाके हाथमें दो। सम्पूर्ण प्रजाने इसका प्रतिवाद किया। पर इस प्रतिवादको सुनता कौन था? राजा जातीय प्रतिवाद सुनने के लिए बहरा बन गया उसे निर्दिष्ट समय पर जहाज़ और

रुपये मिलने ही चाहिए"। सब प्रजाके पास पत्रोंने चले गये। शीघ्र एक और हुक्मनामा निकला कि, जहाज़ोंके बदले में नक़द रुपया लिया जायगा। प्रति जहाज़ ३३०० पाउण्ड देने पड़ेंगे। नोटिस निकला कि, जो रुपये न देगा उसकी सम्पत्ति ज़ब्त की जायगी।

ऐसे समयमें जॉन हॉमडेनने टैक्स देनेसे साफ़ इनकार कर दिया। जो स्वजाति और स्वदेश का मंगलाकांक्षी है— उसकी सुखशय्या जेलखाना और मौत स्वर्ग द्वार है। जॉन हॉम-डेन पर टैक्स के केवल १०) रु० थे, किन्तु इतनेके लिए वह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति और प्राण खोनेको क्यों तैयार हो गया? जिस सत्याग्रहके कारण वह पहले राजाको कर्ज़ देने से 'न' कर चुका था, उसी अन्यायमूलक कारणसे उसने १०) शिपमनी टैक्स देनेसे भी न कर दिया। हॉमडेनने वीरताके साथ कहा कि—"राजाका रुपया उधार माँगना और टैक्स वसूल करना जातीय स्वाधीनताके विरुद्ध है। 'मेग्नाचार्टा'के प्रतिकूल आचरण है।" यदि राजाकी आयका अनुमोदन करता तो सम्भवत: प्रधान मन्त्री ही बन जाता, किन्तु जातीय स्वाधी-नताके सामने वह ऐसे पदको तुच्छ समझता था। उसने अपने निजी स्वार्थको जातीय स्वार्थको बलि चढ़ा दिया था— इसीलिए लोभमें न फँसा। स्वदेशकी स्वाधीनता के लिए उसने राजमहल से जेलखानेको अच्छा समझा। ग्रेट ब्रिटेन प्रदेश के तीस मनुष्योंने इसी वीरका अनुकरण करके टैक्स देनेसे इन-

कार कर दिया। क्रमशः अन्यायको उखाड़ कर फेंक देनेवाले संन्यासियोंका दल बढ़ चला।

राजपक्षकी ओरसे हॉमडेन पर नालिशकी गई। बारह जजोंने बारह दिन तक विचार किया। राजाके वकीलने अपना पक्ष समर्थन करते हुए कहा—"जो अतुल सम्पत्तिका स्वामी है, वह २० शिलिंग कर देनेमें इतना आगापीछा कर रहा है! हॉमडेन पर २० पाउण्ड कर लगाना उचित था।" किन्तु हॉमडेन अचल था। रुपयेकी तादाद पर उसका झगड़ा नहीं था—वह तो न्याय-अन्याय की समस्या सरल कर रहा था। न्यायके सामने राजाका भी सिर नीचा होना चाहिए—न्याय सर्वोच्च है—यही हॉमडेनका पक्ष था। धड़से जुड़ा हुआ मस्तक यदि न्यायके सामने न झुकेगा, तो धड़से न्यारा होकर धूल में लोटता हुआ न्याय का प्रखर प्रताप प्रकट करेगा—यही हॉमडेन का स्थिर सिद्धान्त था।

वेतनभोगी जज अधिकांश राजाकेही पक्षमें थे। जष्टिस क्राउलेने कहा—"यदि राजा रक्खा जायगा, तो उसे अपनी इच्छानुसार करनेकी क्षमता भी देनी होगी। सर्वोपरि शक्तिके बिना राजा नहीं हो सकता। दूसरे जज बर्कलेने कहा—"राजा क़ानून से नहीं बँध सकता, क्योंकि क़ानून बनानेवाला राजा ही है। समयपर इच्छानुसार करनेकी शक्ति राजाको होनी ही चाहिए, क्योंकि शासनका यही प्रधान अस्त्र है। आजतक 'क़ानूनको र जा' मैंने कभी नहीं सुना किन्तु 'रा [illegible] ो क़ानून' बरा

कर सुनता आरहा हूं—और यही सत्य है।" तीसरे जज फिन्चने कहा,—"यद्यपि पार्लियामेण्टकी प्रभुता प्रजाके धन, प्राण और शरीरपर अवश्य है, किन्तु इसी कारण यदि वह राजाको अपने नियमोंमें बांधना चाहे तो नहीं बांध सकती—पार्लियामेण्ट राजाके लिये कोई नियम नहीं बना सकती।" इसी प्रकार बारहमेंसे सात जजोंने राजाके मनमानी करनेके पक्षमें राय दी—वेतनोपजीवी जजोंने राजाके चरणोंमें अपने स्वाधीन विचारोंका खून कर डाला। सामान्य चाकरीके लिए उन्होंने निर्लज्ज सत्यका अपलाप किया। किन्तु पांच जजोंने हामडेन के पक्षकी प्रशंसा की। राजा की सत्ता न्यायसे ऊपर उन्होंने स्वीकार न की। प्रजाके धन और सम्पत्ति पर राजाकी सर्वतो-मुखी प्रभुता उन्होंने जरा भी स्वीकार न की। जजोंकी अधिक संख्या विपक्षमें होनेके कारण हामडेन को इस मुकद्दमेमें हारना पड़ा। किन्तु यह हार ही उसकी सच्ची जीत थी। इस हारने उसे सम्पूर्ण जातिके हृदयमन्दिरमें स्थान दिला दिया। इस घटनासे पूर्व जॉन हामडेनका नाम बहुत कम लोगोंको मालूम था। किन्तु आज ब्रिटेनके एक कोनेसे दूसरे कोने तक उसका नाम बिजलीकी चमक के समान फैल गया। घर-घर उसके साहस की प्रशंसा होने लगी। प्रत्येक जिह्वा उसके आन्दोलन को देशव्यापी बनाने लगी। जो न जानते थे वे पूछने लगे कि, यह महात्मा कौन है, जो अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे स्वजाति की स्वाधीनता और धन सम्पत्तिकी

रक्षाके लिये उद्यत हुआ है—जो बड़े भारी साहससे स्वदेशको राक्षसी कराल ग्राससे मुक्त करानेके लिए तैयार हुआ है, वह देवता कौन है? इस प्रश्न और प्रश्नके उत्तरसे ही ब्रिटेनवासी हॉमडेनको पहचान गये। उस समय आबालवृद्धवनिता इसी की ओर टकटकी लगाकर देखने लगी। इसे स्वदेशका उद्धारकर्त्ता समझकर सब इसपर आत्मसमर्पण करने लगे।

अग्निपरीक्षाका दिन निकट आया। हॉमडेन आदि पाँच कामन्स-भवनके सभ्योंको राजा चार्ल्सने अभियुक्त बनाया। कामन्स सभाने उन पाँचोंको विचारके लिए राजाके हाथमें देनेसे इंकार कर दिया। चार्ल्सने प्रतिज्ञा की कि, उन पाँचोंको ज़बर्दस्ती कामन्स भवनसे कैद करके विचार के लिए लाऊँगा। स्वयं राजा सौ से अधिक शस्त्रधारी सैनिक साथ लेकर कामन्स भवनकी ओर चढ़ दौड़ा। इधर राजाके आने से पहले ही वे पाँचों वहाँसे चले गये थे—इसलिए वहाँ जा-कर राजा केवल क्रोधके मारे क्षुब्ध हुआ। उसने कामन्स-भवनके सब उपस्थित सभ्योंसे कहा—‘मैं देख रहा हूँ कि, पिंजरेके पक्षी उड़ गये। मुझे आशा है कि, जब वे वापिस लौटेंगे तब आप लोग उन्हें मेरे हाथ सौंप देंगे।” सभाने चुप-चाप राजाके इस उन्मत्तप्रलाप को सुना—कुछ उत्तर न दिया। सबने अपने-अपने क्रोधको बड़े कष्टसे दबाया। किन्तु जैसेही चार्ल्स सभा-भवनसे बाहर निकला, वैसेही सब समस्वरसे पुकार उठे—‘यह है अधिकार में हस्तक्षेप! यह है पराधीनताका

कड़ुआ फल !!" शीघ्र ही सभा भङ्ग हुई। फिर उस भवनमें सभा न बैठी। नगरके एक सुरक्षित स्थानमें सभा हुई। किन्तु राजा चार्ल्स अपने हठसे पीछे हटने वाला न था। जैसे ही उसे दूसरे स्थानपर सभा होनेकी खबर लगी, वैसेही वह शस्त्रधारी सैनिक लेकर फिर उन पाँचों सभ्योंको कैद करने दौड़ पड़ा। दोनों ओरके रास्तों और मकानोंसे लोग पुकार-पुकारकर कहने लगे—"उस राजाको धिक्कार है, जो प्रजाके अधिकारोंमें हस्तक्षेप करे।" दसों दिशाओंमें प्रति-ध्वनित होने लगा—"उस राजाको धिक्कार है, जो प्रजाके अधिका रोंमें हस्तक्षेप करे।" राजा चार्ल्स प्रजाकी भर्त्सना और क्रन्दन पर ध्यान न देता हुआ आगे बढ़ा। इस प्रकार् उपेक्षामें प्रजाके भीतर छिपी हुई भयानक विद्रोह की आग जग उठी। नाविक, दूकानदार, विद्यार्थी, नागरिक सब राजा के विरुद्ध खड़े होगये। उन पाँचों सभ्यों को बीचमें घेरकर वे रक्षा करने लगे। राजा के मुँह पर वीर हैमडेन का यश गाने लगे। क्रोध, क्षोभ, दुःख और ग्लानि के मारे भयङ्कर गर्जना करता हुआ राजा उस समय वापिस लौट गया, किन्तु उसने प्रतिज्ञा की कि, इस कामन्स सभाको ही मैं पददलित करूंगा— किन्तु चार्ल्स की यह प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी। हार कर राजाको पाँचों सभ्यों परसे मुकद्दमा उठा लेना पड़ा। पर बहु काल का घेरा हुआ राजा राजवेश में फिर लण्डन नगरमें प्रवेश न कर सका। वह लण्डनमें आया ज़रूर था किन्तु

राजवेश में नहीं,—कैदीके वेशमें । कामन्स-सभाने उसी समय निश्चय कर लिया कि,राजाके साथ विवाद नहीं मिट सकता । पार्लिमेण्ट और राजा दोनों मिलकर राज्य नहीं कर सकते ।

उसी समय से कामन्स सभाने फौज एकत्र करनी शुरू की । हॉमडेनने सबसे पहले फौजमें अपना नाम लिखाया ! वह पैदल सेना का कर्नेल बनाया गया । युद्धके खर्च के लिये उसने २४,०००) रुपये दिये । धन्य हॉमडेन ! धन्य तेरा स्वदेश-प्रेम और तेरा त्याग ! अन्यायमूलक टैक्स के १०) न देकर स्वयं-सेवक सेनाको चौबीस हजार दे दिये !!

१६४३ के जून मासमें, एक स्वयंसेवक सेना लेकर हॉमडेन कुमार रुपार्ट के पीछे चला । ग्यलग्रेभके रणक्षेत्रमें कुमार और हॉमडेन की सेना का मुकाबिला हुआ । दोनों सेनाएँ भयङ्कर संग्राम करने लगीं । युद्धके शुरूमें ही हॉमडेन के एक गोली लगी । इस घटना से उसकी सेना का साहस टूट गया और कुमार की सेना ने मैदान मार लिया । कुछ दूर तक उनका पीछा करके, विफलप्रयत्न कुमार ऑक्सफोर्डमें चले गये ।

इस ओर घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ वीर हॉमडेन धीरे-धीरे युद्ध से हटा । उसका सब शरीर धीरे-धीरे अवसन्न होने लगा —शरीर वेदनाके मारे घोड़े से लटकने लगा । थोड़ी ही दूर पर उसके श्वसुर का विशाल भवन था—अपनी प्रिया एलिज़ाबेथ को जिस घरमें वह विवाह लाया था वह सामने

ही दीख रहा था। हामडेन की इच्छा थी कि, वह अपने अन्तिम समयमें वहीं थोड़ी देर शान्ति से लेटे, पर सामने ही शत्रु-सेना ने मार्ग रोक रक्खा था। उसने दूसरी ओर घोड़े की बाग मोड़ी, किन्तु जब वह वहाँ पहुँचा तब यातना से प्रायः बेहोश होगया था। उस दशामें भी उसका हृदय यह सोच-सोचकर फटा जाता था कि, "मैं स्वदेश का उद्धार न कर सका।" रह-रह कर उसके हृदय में कुछ आशा का सञ्चार होता था और वह कहता था,—"मेरे मरने का दुःख क्या है? मेरे समान हज़ार-हज़ार वीर जीवित हैं—वे स्वदेश का उद्धार करेंगे।" इसी आशासे उत्साहित होकर हामडेनको एक बार होश हुआ, तब उसने युद्ध चलाने वाले नेताओं के नाम एक पत्र लिखा। पत्रमें उसने सबको दृढ़ रहनेका आदेश दिया और लड़ाई किस प्रकार चलानी चाहिये, यह सब बताया। पत्रका अन्तिम शब्द पूरा होते ही, उस वीर की आत्मा अमरधामको प्रयाण कर गई। मानो पत्र लिखने के लिये ही उसमें जान बाकी थी। काम पूरा होते ही, वह पवित्रात्मा—वह चैतन्य मूर्ति इस पाप-पृथ्वीको त्याग कर गई। दशों दिशाओं से आकाश-भेदी हाहाकार सुनाई पड़ा। इँगलैण्ड बालक और वृद्ध हामडेन के शोक-सागरमें डूबने लगे।

उस दिन सब इँगलैण्डवासियोंने एकत्र होकर हामडेन के शवको यथोचित समाधि दी। चारों ओर [illegible] सेना

निशान झुकाये हुए उसके शवके साथ चले। प्रत्येक सैनिकने हॉमडेनकी समाधिपर उसीकी तरह जननी जन्मभूमिको दुखोंसे छुड़ानेके लिये प्राण समर्पण करने की प्रतिज्ञा की। इसके अनन्तर सब परमात्माकी करुणासे वीर हॉमडेनका यशोगान करते हुए लौटे।

धन्य वीर! धन्य! मरकर भी तुमने अमरत्व लाभ किया! तुम मरे अवश्य, किन्तु तुम्हारे उदाहरणसे हज़ार हज़ार हॉमडेन पैदा हो गये। तुम भग्न-हृदयसे अवश्य विदा हुए, किन्तु तुम्हारे शिष्योंने तुम्हारे आरम्भ किये हुए यज्ञको पूरा किया। यदि तुम आत्मबलि न देते, तो वह यज्ञ पूरा न होता। जो दुर्मद राजा चार्ल्स तुम्हें कैद करने गया था—यह देखो वह दीन-निरीह की तरह फाँसीके तख़्ते पर झूल रहा है। जिस इङ्गलैण्डकी स्वाधीनताके लिये तुमने प्राण दिये—यह देखो, वह इङ्गलैण्ड आज स्वाधीन, समुन्नत, उज्ज्वल और नई ज्योतिसे दमक रहा है। आज प्रजाशक्ति-सम्पन्न इङ्गलैण्डके प्रतापसे पृथ्वी काँप रही है। जो मूर्ख है वही कहता है कि, महापुरुषोंकी मृत्यु होती है,—नहीं, महापुरुषकी तो मृत्यु होती ही नहीं। वह अमर होता है। हज़ारों-लाखों वर्ष तक वह मुर्दोंमें जान डाला करता है। उसकी कीर्ति अनन्तकाल-स्थायिनी होती है।

जो सत्यको अपनाता है—सत्यके सम्मुखीन होता है—वह क्या नहीं कर सकता? कोटि कोटि जन सैनिक सम्मिलित-

पूजित राजसिंहासन उसकी हुंकार से थरथरा उठते हैं। रत्न-जटित मणिमुक्ता-खचित—उज्ज्वल चन्द्रातपस किरीट-मुकुट उस वीरकी भ्रूभङ्गीमात्रसे भूलुण्ठित कन्दुककी तरह ठुकराते फिरते हैं। सत्याग्रह और मनुष्य-प्रेम मनुष्यको देवो-शक्तिसम्पन्न कर देता है। वीर संन्यासी ओल्ड कासलने अपनी आत्मबलि देकर इङ्गलैण्डको उज्ज्वल यश-सम्पन्न कर दिया। उसीके प्रतापसे इङ्गलैण्ड सम्पूर्ण यौरपमें प्रजाशासन का प्रवर्त्तक बना। आइये पाठक! आपको एक और दूसरे वीरकी गाथा सुनाकर, यह अध्याय समाप्त करें।

तेरहवीं शताब्दीके मध्यमें स्विट्जरलैण्डका एक राजनीतिक संन्यासी आष्ट्रियाके स्वाधीनताके संग्राममें प्रवृत्त हुआ। इस इतिहास-प्रसिद्ध वीरका नाम विलियम टेल था। यदि इसका वास्तविक कार्य आलोचन किया जाय, तो वह कवि-कल्पनाके समान प्रतीत होगा—वह नवीन पौराणिक कथाके समान जान पड़ेगा; किन्तु वस्तुतः वह मनुष्य—मनुष्यरूपी देवता था। उसके हृदयकी विशालता, इच्छाकी प्रबलता, लक्ष्यकी अचञ्चलता, स्वजाति के प्रेम और स्वदेशानुरागकी गम्भीरताने उसे देवता बना दिया था। वह स्वदेशके उद्धारके लिये मौतसे—या मौतसे भी अधिकतर और कुछ भयानकता हो तो उससे—क्षणमात्र के लिये भी विचलित न होता था। उसमें भयका नाम भी न था। विक्रम और शौर्यमें वह केसरी था।

जब स्विज़रलैण्डके पैरोंमें आष्ट्रियाकी पहनाई हुई परा-धीनताकी बेड़ियाँ पड़ी थीं—जब स्विज़रलैण्डके चारों ओर अन्धकार था—अत्याचार था—उस समय जातीय दलका नेता बनकर यह वीर सामने आया था। उसके शरीरकी दीप्ति और मुखमण्डल पर तेजपुञ्ज देखकर सब स्विस लोगोंको निश्चय हुआ था कि, विजयलक्ष्मीने उसके मुखको लावण्यमय बना रक्खा है।

इसका जन्म साधारण किसानके घरमें हुआ था, किन्तु आत्मा असाधारण थी। उसे शत्रुके हाथ आत्मसमर्पण करने की अपेक्षा मृत्यु भी बाव पसन्द थी। एक दिन एक स्विस किसान अपने खेतमें हल जोत रहा था। उसी समय आ-ष्ट्रिया के प्रतिनिधि का एक साधारण नौकर वहाँ आया और उसने हलसे दोनों बैल खोल दिये। उस किसानसे उसने साभिमान कहा,—"इन बैलोंके स्थान पर यदि दो स्विज़र-लैण्ड वासी जोते जायँ, तो बहुत ही अच्छा हो—क्योंकि ये केवल बोझ ढोनेके लिये ही पैदा हुए हैं।" स्वजातिका यह अपमान उस स्वाधीनचेता किसानसे न सहा गया। उसने अपनी लम्बी लाठी से प्रतिनिधिके नौकर का सर्वाङ्ग स्वागत किया। मार-पीटकर पकड़े जानेके भयसे वह भाग गया। क्रोधोन्मत्त आष्ट्रियन उसे न पाकर बदलेमें उसके वृद्ध पिताको पकड़ ले गये। इसकी जो स्थावर-जंगम सम्पत्ति थी वह जप्त कर ली गई—और—उन दुर्दान्त पिशाचोंने बेचारे वृद्ध

की दोनों आँखें निकाल लीं ! ! कोई सहारा न रहनेके कारण अन्धा—जरा-जीर्ण वृद्ध—घर-घर टुकड़े मांगने लगा। उस समय देश भरकी न्याय, दया थरथरा उठी। ऐसे अनेक अत्याचारोंसे अन्तमें देशका क्रोध जाग उठा। लोग झुण्डके-झुण्ड आकर एक स्थान पर एकत्र होने लगे। सबने एक स्वर से जातीय सेनाका नायक वीरश्रेष्ठ विलियम टेलको बनाया। बहुत प्रकट और गुप्त अधिवेशन हुए। परस्पर विश्वास करने और अपना उद्देश गुप्त रखने की सबने शपथ ली। साधारण उत्थानके लिये एक दिन नियत किया। सब उत्साह से उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे—ऐसेही समय एक दुर्घटना घटी। आष्ट्रियन गवर्नरने अपनी टोपी एक पेड़की शाखापर लटका दी और आज्ञा प्रचारित की कि, इस टोपी के सामने सब स्विज़रलैण्डवासियोंको घुटने टेक कर और नङ्गे सिर होकर सम्मान करना होगा। वीरवर विलि-यम टेलने ऐसी टोपियोंका सम्मान करनेसे साफ़ नाहीं कर दी। आष्ट्रियन पुलिस उसे पकड़ कर गवर्नर के पास ले गई। निष्ठुर गवर्नरने आज्ञा दी कि, टेलसे उसके पुत्रके सिर पर एक फल रखकर निशाना लगवाया जाय। बाणविद्यामें टेल बड़ा दक्ष था। उसने बाणसे पुत्रके सिर पर रक्खा हुआ फल वेध दिया और पुत्रके कहीं चोट न आई। सबने उस की प्रशंसा की। जिन लोगोंने इस घटनाके स्मरणार्थ जो कीर्त्तिस्तम्भ बनाया था, वह अद्यावधि वर्त्तमान है।

फलके बेध देनेके बाद दूसरा बाण टेल ने अपने कप-ड़ेके नीचे छिपा लिया; पर गवर्नरने उसे देख लिया। उसने पूछा,—"दूसरा बाण क्यों लाया था?" टेलने साफ़ ही साफ़ कह दिया कि,—"यदि वह बाण फल न भेद कर पुत्रका शरीर भेदता, तो इस दूसरे बाणसे तुम्हें यमलोक रवाना करता।" क्रोधसे अधीर होकर गवर्नरने उसे सांकल से बँधवाकर अपनी नाव पर ले जानेकी आज्ञा दी। उसी नावमें स्वयं गवर्नर बैठ कर चला। उसकी इच्छा थी कि, इसे कूसनाचके क़िलेमें क़ैद करके दूसरी जगह जाऊँगा—किन्तु घटना और ही प्रकार घटी। सहसा ज़ोर की आंधी उठी और वर्षा होने लगी। पानी की उत्ताल तरङ्गोंमें नाव डग-मगाने लगी। सब यह जानते थे कि, टेल नाव चलानेमें बड़ा चतुर है। गवर्नरने उसकी सांकल खोलने की आज्ञा दी। नावका डाँड लेकर थोड़ी दूर उसने चलाया और फिर ऐसा धक्का मारा कि नाव उलट गई। पानीमें गिरते ही टेल थोड़ी सी देरमें मीलों तैर कर एक उछालमें किनारे पर आ कूदा—किन्तु नौकरों सहित गवर्नर अतलजलमें समा गया। उसके लौटनेके कुछ घण्टे बाद ही फिर जातीय सेना एकत्र हो गई और टेलके नेतृत्वमें युद्ध शुरू हुआ। लगातार युद्धसे आष्ट्रिया की सेना परास्त हुई और क़िलेके ऊँचे कङ्गूरे पर फिर स्विज़रलैण्ड का स्वाधीन झण्डा फहराने लगा। इति-हास का ऐसा एक भी पाठक नहीं है, जो विलियम टेलको

आश्चर्य-वीरतासे परिचित न हो। उस पार्वत्य प्रदेशके प्रत्येक अधिवासी के हृदयमें महात्मा टेलकी स्मृति भक्तिभावसे अब भी रक्षित और पूजित है। धन्य वीर तेरा स्वदेश प्रेम!!

पतित जातिको ऐसेही महात्मा उन्नतिके पथ पर ले जाते हैं—नरकके गर्त्त से उबारकर यही स्वर्ग लाभ कराते हैं—भविष्यके मानव-कुलके लिये यही उदाहरण बनते हैं, उनकी स्मृति ही हृदय-हृदय और प्राण-प्राण में पुनः सञ्जीवनी-शक्ति प्रसार करती है।



चौथा अध्याय।

आत्मोत्सर्ग।

"यथा चतुर्भिःकनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदन तापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा॥"

जैसे कसौटी पर कस कर, काटकर, आगमें तपाकर और हथौड़ी से कूटकर चारों प्रकारसे सोनेकी परीक्षा होती है—सोनेका खरापन जैसे इन चार परीक्षाओंसे प्रकट होता है; वैसेही वर्ण परम्परा द्वारा फैली हुई कीर्ति, चरित्र, कुल और कर्म से पुरुषकी परीक्षा होती है—सोनेकी तरह इन चार परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होने पर पुरुष पुरुष होता है।"

मानव जीवन नित्य आत्मोत्सर्गमय है। क्षुद्र मनुष्य अपने कुटुम्बके लिये, स्त्रीके लिये, पुत्र-कलत्र के लिये जीवन-भर

अविराम श्रम करके उनका भरण-पोषण करता है—उन्हें दुःखोंसे छुड़ाकर सुखी करनेकी चेष्टा करता है। विशाल हृदय—विशाल आत्मा—विशाल भाव वाला सहृदयशील मनुष्य सम्पूर्ण जाति—सम्पूर्ण देशको दुःखोंसे छुड़ाकर सुखी करनेकी चेष्टा करता है। एक का कर्त्तव्य घरकी चहारदीवारी के भीतर आबद्ध है—दूसरे का जङ्गलों, पर्वतों, नदियोंको पार करता हुआ आसमुद्र मुक्त—विस्तृत व्याप्त है। इससे अधिक विशाल संसार भरका मानव-जातिके प्रति मनुष्य का कर्त्तव्य है। किन्तु शाक्यसिंह और महावीर स्वामीकी तरह जिनका विस्तार कीट पतङ्ग, वृक्ष लता, अचल उद्भिद, जल अग्निके सूक्ष्म जीवाणु तक व्याप्त है—जिनका कर्त्तव्य दशों दिशा मुक्त—अनन्त—आकाश के समान विस्तृत है, वे संसार भरमें बहुत कम हैं। संसार भरमें सिवा एक आर्य्य जातिके और कोई पुण्यात्मा इस हद तक नहीं पहुँचा। वही आर्य्यजाति आज कर्महीन, निर्जीव बन गई। आज उसके लिये विदेशी उदाहरण लिख कर 'आत्मोत्सर्ग' समझानेकी आवश्यकता हुई!! चित्तौरगढ़, थेरका मैदान, कुरुक्षेत्र, पानीपत, सिन्धुका किनारा आदि सैकड़ों ज्वलन्त सजीव आत्मोत्सर्गोंके क्षेत्र जिस जातिकी साक्षी हैं—वह जाति कुछ विदेशी व्यक्तियोंके चरित्र भी अनुशीलन करे। और वास्तव में महापुरुष तो सब देशों और सब जातियोंकी सम्पत्ति होते हैं।

तेरहवीं शताब्दीका स्काटलैण्ड अभाव में युद्धके लिये

झगड़ने वाले गोर्वोका आवास-क्षेत्र बन रहा है। वारह मनुष्य राजमुकुटके लिये आत्मघाती हो रहे हैं। इङ्गलेण्डेश्वर प्रथम एडवर्ड न्याय करनेके लिये बुलाये गये—किन्तु—स्कॉटलैंडके स्वामी बन गये। वालेस आदि कुछ युवा इङ्गलेण्डेश्वरके आधिपत्यका प्रतिवाद करने खड़े हुए। मुष्टिमेय धन, जन, प्रभुतारहित युवा प्रबलप्रतापी इङ्गलेण्डेश्वरका प्रतिवाद कैसे करें? संसार में अब तक इसका दूसरा उपाय उद्भूत नहीं हुआ। वे दरिद्रव्रतपालक बने। जङ्गल, पहाड़, नदीमें छिपते हुए वे अपना संकल्प पूरा करने के लिये घूमने लगे। अनाहार, अनिद्रा से दिन—मास—वर्ष बीतने लगे, किन्तु किसी प्रकार भी वह अग्नि प्रशमन न हुई। उनकी प्रतिज्ञा किसी प्रकार विचलित नहीं हुई—प्रतिज्ञा थी कि या तो स्कॉटलेण्डकी स्वाधीनता का पुनरुद्धार करेंगे और या उसी यज्ञमें अपनी आहुति देदेंगे। वालेस, ब्रूस, कार्लाइल आदि संन्यासियों के उज्ज्वल त्याग से मोहित होकर असंख्य स्कॉच जातीय झण्डे के नीचे आने लगे। इधर अँगरेज़ी सेना के अत्याचार से स्कॉटलेण्ड का हृदय विदीर्ण होने लगा। लूट और सतीत्वनाश के समाचारों से हाहाकार-रव उठा। अत्याचारी सैनिकों पर प्रजा द्वारा नालिश करने पर सेनापति उन बेचारों को फाँसी पर लटकवाने लगे। इसलिये लोगोंने न्यायालयमें जाना छोड़ दिया मार्मिक यातना को मर कर सहने लगे। चारों ओर

अन्धकार छा गया—अकारण मारे हुए पति की नवीना विधवाके क्रन्दन से—सती के सतीत्वनाश से—बलपूर्वक सर्वस्व लूटे हुए किसान की आह से—स्काटलैण्ड का आकाश फटने लगा। किसान खेत नहीं जोतते, क्योंकि उन्हें विश्वास नहीं कि अनाज पकने पर अँगरेज़ सैनिक उन्हें बल-पूर्वक न छीन लेंगे। स्त्रियाँ सूत नहीं काततीं, क्योंकि उन्हें विश्वास है कि अँगरेज़ सैनिक आकर उसे लूट ले जायँगे। स्काटलैण्ड के सुन्दर सरोवरोंमें मछली पकड़ने के लिये मछुए जाल नहीं डालते, क्योंकि उन्हें विश्वास है कि अँगरेज़ सैनिक आकर उनकी सुन्दर-सुन्दर मछलियाँ लूट ले जायँगे। अँगरेज़ डकैत न मालूम किस ओर छिपे हैं, जो आकर अपना बीभत्स ताण्डव प्रारम्भ कर देंगे।

भगवन्! स्काटलैण्ड का भाग्य और कब तक इसी प्रकार दु:खोंसे घिरा रहेगा? क्या स्काटलैण्ड का सौभाग्य-सूर्य सदा के लिये अस्त होगया! क्या फिर कभी स्काटिश गगन-मण्डल में वह उदय न होगा? स्काटलैण्ड की उज्ज्वल आशा-लता क्या सदा के लिये काले समुद्रमें डूब गई? स्काटलैण्ड की स्वाधीनता-कमलिनी सो गई या मर गई? नहीं, कभी नहीं, वह देखो वह सो रही है। फिर एक स्वर्ण-कमल सौभाग्यसूर्य के उदय से खिल उठा। स्वाधीनता-कमलिनीने नेत्र खोले—यह स्वप्न है या माया? इतनी विशाल अँगरेज़ी सेना कहाँ चली गई? मूठी भर स्काट वीरों के सामने वह

असूबन्द एक अङ्गारे से रुई के ढेर की तरह 'सर्वस्वान्त' हो रही है। स्कॉट जातीय इससे अपना भविष्य उज्ज्वल देखा।

प्रातःसूर्य की सुवर्णमय किरण-रेखाओं से मण्डित भायर नदी के किनारे चिन्ताग्रस्त यह कौन वीर घूम रहा है? विधाता ने जिसे विशाल, उन्नत, सुन्दर लावण्यमय, मोहिनी-शक्तिसम्पन्न मुखमण्डल दिया है, वह वीर कौन है? जिसके उज्ज्वल, विशाल नेत्रों से प्रतिभा और अग्निज्वाला निकल रही है, वह कौन है? जिसके उन्नत कन्धों पर प्रातःसमीर से क्रीड़ा करते हुए केशगुच्छ पड़े हैं—जिसकी कमर में रक्त की प्यासी तलवार झकझक कर रही है—सर्वस्व रहते जो सर्व-स्वत्यागी संन्यासी बना है—वह वीर कौन है? यह वही स्कॉट-लैण्ड का उद्धारकर्ता—स्कॉटलैण्ड-रवि वीर वालेस है। जिसके प्रचण्ड खड्गके आघात से एक दो नहीं हजारों अँगरेज़ अपना जीवन समाप्त कर चुके,यह वही वालेस है। जिसने अपनी उद्दीप-नापूर्ण वाणीसे मृतप्राय स्कॉटों में संजीवनीशक्ति प्रवाहित कर दी—जिसकी वीर गरिमाइत खड्ग की चमक से इँगलैण्डेश्वर एडवर्ड काँप उठा—यह वही स्कॉटसिंह वालेस है। अपनी पताका उड़ाता हुआ स्वाधीन इँगलैण्ड की राजधानी लण्डन पर चढ़ आने वाला वीर वालेस यही है। जिससे इँग-लैण्डेश्वर एडवर्ड की रानी सन्धि की भीख माँगने आई थी, यह वही वालेस है। कहना न होगा कि,यह वीर चिन्तामग्न होकर अपनी मातृभूमि की दुरवस्था और अतीत गौरव की

बात सोच रहा है। इस स्वाधीनताके संग्राममें —इस मनुष्यत्व के पवित्र यज्ञमें वालेस ने पिता, भ्राता, माता और अन्तमें प्राणप्रिया स्नेहमयी भार्या को एक-एक करके बलि दी। स्वाधीनता-देवी इतने पर भी प्रसन्न न हुई। उस वीर की अन्तराग्नि और भी अधिक उद्दीप्त हो उठी। अँगरेज़ों को दूर करके स्काटलेण्ड को स्वाधीन करूँगा—यही सर्वग्रासिनी चिन्ता एकमात्र उसकी सहचरी थी। सोते-जागते, खाते-पीते उसे यह चिन्ता क्षणमात्र के लिए भी विश्राम न लेने देती थी। वह धन, जन, परिवार, आत्मबन्धु सब कुछ खो चुका था—फिर भी उसके बिना बुलाये हज़ारों स्काट आकर उसके झण्डे के नीचे खड़े होते थे। वह त्यागी राजनीतिक संन्यासी था—वह अपने मन प्राण की व्यथा से दूसरों को भी व्यथित कर सकता था। इसीलिये वह पाँच सौ सेना से दस हज़ार अँगरेज़ों की सेना का मुक़ाबिला करता था और पराजित ख़बर लेजानेके लिये भी किसी को बाक़ी न छोड़ता था। फ़ूलिंग की संग्रामभूमि उसके भीम विक्रम का परिचय-स्थल है। कहा जाता है कि, इस स्थान पर उसने चार हज़ार सेनासे पचास हज़ार अँगरेज़ों की सेना का मुक़ाबिला किया और दिन भरमें चालीस हज़ार काट कर मैदान में रक्त की नदी बहा दी—विजय वालेस की ही हुई। स्काट-क़िलों पर स्वाधीनता का झण्डा गाड़ कर वालेस सारी सेना को बढ़ाता हुआ इँगलैण्ड पर चढ़ गया और मतवाले हाथी की तरह

यहाँ वीरदर्प से पृथ्वी कँपाने लगा। किन्तु भाग्य-लक्ष्मी वालेस से रुष्ट थी। उस समय एडवर्ड ने वालेस से सन्धि करली। और शीघ्र ही इस अपमान का बदला लेने के लिये अगण्य सेना लेकर एडवर्ड स्कॉटलेण्ड के द्वार पर आ उपस्थित हुए। एडवर्ड को मालूम था कि, वालेस की सेना रण में अजेय है। इसलिये कुछ जाति-द्रोहियों को मिलाकर स्कॉट सेना में विद्रोह करा दिया। स्कॉट-प्रधान पुरुषों में सेनापति बनने के लिये विद्रोह मच गया। फूट का ज़हरीला फल अपना रङ्ग लाया। स्कॉटलेण्डके सूने आकाश का चन्द्रमा धोखे से अँगरेजोंके हाथ क़ैद होगया। फलकार्क की संग्राम-भूमिमें स्कॉट-सूर्य फिर अस्त होगया। पिशाची तृष्णा से विह्वल होकर एडवर्ड और उसके चुने हुए जजों ने वालेसके देव-दुर्लभ शरीर के टुकड़े-टुकड़े करवाये। उसके शरीर का एक-एक टुकड़ा लण्डन नगरके एक-एक दरवाज़े पर लटकाया गया—उसका सिर लण्डन के पुल पर बाँधा गया। स्वाधीनता-देवी के चरणों में वीर वालेस ने अपनी सम्पूर्ण बलि देदी। जैसे योगी क्राइस्ट ने मनुष्य-जाति के पापों का प्रायश्चित्त करनेके लिये अपनी देह की बलि दी, उसी प्रकार स्कॉट-जाति के पापों का प्रायश्चित्त करने के लिये वीर वालेस ने आत्मोत्सर्ग कर दिया। स्वर्ग से देवोंने उसपर पुष्प बरसाये। यक्ष किन्नर समस्वरसे बोल उठे,—"धन्य वालेस! धन्य स्कॉटलेण्ड—धन्य वालेस-जननी!" संसार से इसकी प्रतिध्वनि हुई "धन्य

वालेस—धन्य स्काटलैण्ड—धन्य वालेस-जननी !" इँगलैण्ड की छाती पर उस वीर का पवित्र रक्त गिरा। इस वीर-हत्या का प्रायश्चित्त अँगरेजों को 'व्यानकवरन' की संग्राम-भूमिमें करना पड़ा। एक लाख अँगरेज़ सैनिकोंमें से जीवित खबर देनेके लिये कुछ उँगलियों पर गिनने योग्य सिपाही बचे। स्काटलैण्ड को स्वाधीनता मिली। वालेस का नाम लेते ही एक-एक स्काट की छाती वीरता के मारे फूलने लगी। धन्य वालेस! धन्य तेरा स्वदेश प्रेम! तूने मर कर भी स्वदेश का उद्धार किया। तू अमर है; यदि अमर न होता तो आज सात शताब्दी बाद एक आर्य्य-युवक तेरा गुण गान क्यों करता? यदि तू अमर न होता तो तेरा नाम लेते ही शरीरमें विद्युत-सञ्चार न होता !!

आत्मोत्सर्ग का ज्वलन्त उदाहरण मनुष्यको शक्तिमय—उज्ज्वल प्रकाशमय बना देता है! जब वालेस का वध हुआ। तब स्काटलैण्ड की आँखें खुलीं और उन्होंने फूट का विषैला फल त्यागा। ऐक्यसञ्चार होते ही स्काटलैण्ड स्वाधीन बन गया।

अब हम पराधीन इटली के दो संन्यासियों की गाथा पाठकों को सुनावेंगे। क्षत्रिय जातीय वीरों में इटलीको खड्गहस्त करने वाला वीर गैरीबाल्डी था। आस्ट्रिया के पञ्जे से इटली का उद्धार करने वाला त्यागी गैरीबाल्डी था।

१८०७ ई० की २२ वीं जुलाई को, इटली के नाइस नामक नगरमें गैरीबाल्डी का जन्म हुआ था। उनकी

माता-पिता अति दरिद्र थे, इसी कारण उसे उच्च शिक्षा न दिला सके। धन की कमी से उसे बाल्यावस्थामें ही सार्डिनिया की नौ सेनामें भर्ती होना पड़ा, किन्तु इस दशामें भी वह साहस और धैर्य के लिये विख्यात होगया। उसका मन उन्नतिशील और आत्मा तेज-पुञ्ज था—इसलिये उससे विदेशियोंके द्वारा इटली की दुर्गति न देखी गई। इसी समय इटली में आष्ट्रिया के विरुद्ध जातीय अभ्युदय हुआ। जेनोवा नगर में इटलीवालों की एक गुप्त सभा पकड़ी गई, गैरीबाल्डी भी इसका सभासद था, इसलिये उसे देश-निकाले का दण्ड मिला। गैरीबाल्डी ने भाग कर फ्रान्स में शरण ली।

इस अवसर पर उसका जीवन उपन्यास के नायक के समान विचित्र घटनापूर्ण होगया था। उसे आवश्यकतानुसार नाना वेष धारण करने पड़े। अन्तमें, सूरत बदल कर और अज्ञातवास में उसने मार्सेल्स में एक रहनेयोग्य निरापद स्थान कर लिया। यहीं महात्मा मेज़िनी से उसका परिचय हुआ और उससे मन्त्र ग्रहण करके वह 'नवीन इटली' सभाका सभ्य बना। इसी समय से उसका जीवन इटली की उद्धार-साधना के लिये उत्सर्गीकृत हुआ। दो वर्ष यहीं रहकर उसने गणित और विज्ञानमें पारदर्शिता प्राप्त की। वह कार्य के लिये नितान्त व्यग्र था—उसका मन कार्यशील था—इसीलिये एक भिन्न देशीय जहाज़ पर नौकरी करके उसने ट्युनिस की

यात्रा की और ब्रूनिस पहुँच कर वहाँ की भी सेना में भर्ती होगया, किन्तु उसका मन जिस कार्य्यक्षेत्र की खोज कर रहा था, जब वह उसे न मिला, तब वह उदास होगया और कुछ महीनोंमें ही काम छोड़कर वह रास्थोजेनो की ओर चला।

रास्थोजेनो इसी समय साधारणतन्त्रमें परिणत हुआ था। गैरीबाल्डी को इस नवीन साधारणतन्त्र में कार्य्य करना अच्छा मालूम हुआ। उसी समय इस साधारणतन्त्र का एक जाति से युद्ध छिड़ गया। साधारणतन्त्रवालोंने अज्ञात युवा गैरीबाल्डी को अपनी ओरसे नौ सेना का स्वामी बनाकर युद्धमें भेज दिया।

सब सहयोगियोंने इस अज्ञात विदेशी युवाकी कार्य्यवली को ध्यानपूर्वक देख रहे थे। उसके अनुभव, विचक्षणता और अधिक क्या, उसके साहस पर भी लोगों को सन्देह था। किन्तु कुछ ही दिनोंमें सब को मालूम होगया कि, यह पुरुष धातु का बना है। इसकी वीरता कुछ सप्ताहमें ही सब पर प्रकट होगई। अनेक लोग कहने लगे, यह मनुष्य नहीं किन्तु दैवीशक्तिसम्पन्न पुरुष है। संग्रामभूमिमें निर्भयतापूर्व्वक वह मौतके सामने बढ़ने लगा, किन्तु उसके शरीरमें एक भी घाव नहीं लगा—लोग उसे मन्त्ररक्षित पुरुष कहने लगे। केवल गिन्ती के मनुष्यों को साथ लेकर वह शत्रुओं के व्यूह के बीच घुस जाता और थोड़ी ही देरमें फिर अक्षत शरीर से अपनी सेना में लौट आता था। गोले गोलियाँ उसके

शरीर के कपड़ों से रगड़ खाते हुए निकल जाते थे, किन्तु उसके शरीरमें न लगते थे। उसकी निर्भयता देखकर सैनिक मोहित होजाते थे। वह शौर्य और वीर्य में जैसे लोगोंको आश्चर्यमें डालने वाला था, वैसेही दया में भी वह उन्नतहृदय था। उसने विजयसे पहले या पीछे अपने शत्रुओं का व्यर्थ रक्तपात नहीं किया। उसकी विचित्र पोशाक, लावण्यमय मुखश्री अलौकिक गुणोंके साथ मिलकर सबको मुग्ध कर देती थी। बाहर और भीतर की शोभासे वह संसार का मनो-मोहक था। सम्पूर्ण सेना मन्त्रमुग्ध के समान उसका आदेश पालती थी। साधारणतन्त्र के सब मनुष्य गैरीबाल्डी के बड़े कृतज्ञ हुए—और इस कृतज्ञताके स्वरूपमें उन्होंने प्रचार किया कि, अबसे वीर गेरबाल्डी की सेना गौरव-सूचनार्थ सदैव दक्षिण पार्श्व पर रहेगी। संग्राम-भूमिमें उसकी सेना आने पर जातीय सेनाका भी यह गौरव न होगा। अज्ञात कुल-शील विदेशी युवा का यह सम्मान कम गौरव-द्योतक नहीं है।

इधर गैरीबाल्डी की अद्भुत विजय का समाचार इटली पहुँचा। समस्त इटली इस समाचारसे आनन्दित हो उठी। फ्लोरेन्स ने प्रकट किया कि, वह उसे एक तलवार भेंट देगा। किन्तु इस भेंट लेनेसे पहले ही उसे इटली-उद्धारके लिये व्यस्त होना पड़ा। १८७८ ई०के जातीय अभ्युत्थानमें योग देनेके लिए शीघ्र ही वह स्वदेश पहुंचा शीघ्र जातीय सेना

लेकर वह आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध करने लग पड़ा। उसकी बन्दूक अविराम शत्रुओं पर अग्निवर्षा करने लगी।

गैरीबाल्डी का नाम सुनते ही असंख्य स्वदेशभक्त स्वजाति प्रेमिक वीर आ-आकर उसकी सेनामें भर्ती होने लगे। इसी सेना से उसने आस्ट्रियनों पर आक्रमण किया—लगातार कई युद्धों के बाद उसे जय प्राप्त हुई। किन्तु अन्तमें इस युद्धमें उसे हारना पड़ा—सचमुच इसमें उसका दोष न था—जातीय विश्वासघातकता और सहायता की कमी ही इसका एकमात्र कारण था।

उसके शौर्य-वीर्य और दया-दाक्षिण्य से आस्ट्रियन सेनाने एकस्वर से उसे अद्वितीय रणवीर कहा था।—किन्तु इसकी विजय न हुई—वह इटली को स्वाधीन न कर सका, इससे उदास होकर उसने जातीय सेनाको विदा कर दिया और स्वयं अमेरिका के युनाइटेड स्टेट्स में आकर वाणिज्य करता हुआ शुभ दिनकी प्रतीक्षा करने लगा।

ऐसे समय में अमेरिकाके पेरू प्रदेशमें युद्ध ठना। उस अवसर पर पेरू की सेना का अधिपति गैरीबाल्डी बनाया गया। इससे उसका यश चारों ओर फैल गया।

पेरू के युद्ध की समाप्ति के बाद गैरीबाल्डी स्वदेश लौट आया और अपने स्त्री पुत्र के साथ क्याप्रेरा द्वीपमें पांच वर्ष तक अज्ञात रूपसे रहा। उसके शरीरमें आलस्य का नाम भी न था। इस द्वीपमें उसने खेतीका काम शुरू किया।

जङ्गल साफ़ करवा कर उसने खेती करवाई और अनाजके लिये विशाल घर बनवाये। थोड़े ही समयमें उसका घर धन-धान्यपूर्ण होगया। उसने अपने खेतकी चीज़ें अन्यान्य स्थानों पर बिक्री के लिये भेजने को एक छोटासा जहाज़ बनवाया। समय समय पर उसीमें चढ़कर वह अनाज और खेती की अन्यान्य चीज़ें बेचने इटलीके नाइस नगरमें जाता था। उसके आदर्श साधारण जीवन—प्रफुल्ल अमपरायणता—और रमणीय मनोरम गुणावलीने उसे सब परिचित मनुष्यों की श्रद्धा और भक्ति का पात्र बना दिया। भारतीय युवक नौकरी न पाकर हताश होजाते हैं,—वे यह नहीं सोचते कि रत्नगर्भा भारतवसुन्धरा उनके घर धन-धान्य पूर्ण कर सकती है। गैरीबाल्डी की तरह पृथ्वी की आराधना करना सीखो। वह अपनी छाती चीर कर अब भी अन्नदान करेगी। भारतीय सन्तान होकर क्लर्क बनने की आवश्यकता नहीं है।

दासताकी मर्मान्तक वेदना सहती हुई इटलीने फिर सिर उठाया। "इटली की विजय हो" के घोर नाद से फिर दिशाएँ काँपने लगीं। इस अन्तिम स्वाधीनताके संग्रामके समय फिर सबकी दृष्टि गैरीबाल्डी पर पड़ी। उस जातीय आह्वान की गैरीबाल्डीसे उपेक्षा कब की जा सकती थी? उसके हृदयकी शान्त अग्नि फिर जल उठी। स्वाधीनताके झण्डा उत्थापन देखकर उससे घरमें स्थिर न बैठा गया। इटलीकी स्वाधीनताके लिए वह सब कुछ दे सकता था अपने

स्त्री पुत्रको भी बलि दे सकता था स्वयं अपना भी बलि चढ़ा सकता था। वह लुटेरा या डाकू न था, बलके सहारा लेकर किसीका धन लूटने की उसकी इच्छा न थी। वह धन के लिए संग्राम करनेवाला सैनिक न था—अपना वीर विक्रम दिखाकर, लोगोंको मुग्ध करके राजसिंहासन लेनेकी उसकी इच्छा न थी। नाटक के पात्र की तरह वीरता की डींग मारना और कोरा अभिनय दिखाना उसका उद्देश न था। वह प्रकृति की निर्मल सन्तान था—उसके हृदयको कपटने छुआ तक न था। वह इटलीको अपने प्राणोंकी अपेक्षा भी अधिक चाहता था, इसीलिए प्राण देनेको प्रस्तुत था। जातीय अधिनायक बनाकर प्रकृतिने उसे भेजा था—इसीलिए समस्त इटलीने एकस्वरसे उसे जातीय सेनाका नायक बनाया। वह प्राचीनकालके डिक्टेटर लोगोंकी तरह हल त्याग कर स्वदेशके लिए संग्राम-भूमिमें आगया। यदि वह चाहता तो नेपोलियनके समान इटलीका सम्राट् बन सकता था। किन्तु वह जाति-प्रेमी अपनी उन्नति के लिए व्याकुल न था। इटलीसे शत्रुओंको सर्वथा दूर करके उसने इटलीके राजसिंहासन पर विक्टर इमैनुएल को अभि-षिक्त किया। ऐसा कोई पदार्थ न था, जो विक्टर इमैनुएल गैरीबाल्डीको देनेके लिए तैयार न हो। ऊँचेसे ऊँचा ओहदा, बड़ीसे बड़ी पेन्शन, जागीर—सब कुछ उसने देना चाहा, किन्तु उस त्यागी संन्यासीने कुछ भी लेना स्वीकार न किया। उसने स्वदेश की स्वाधीनताके लिए तलवार धारण कि-

आत्मी थी। जैसेही स्वदेश का उद्धार हुआ; वैसेही अपनी तलवार म्यानमें रखकर वह अपने द्वीप की पर्णकुटीमें चला गया और हल जोत कर अपनी जीविका निर्वाह करने लगा। वह जहाँ जाता वहीँ लोग झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे हो कर "गेरीवाल्डी की जय" नाद करने लगते और उसपर फूल बरसाते—इससे विरक्त होकर उसने बस्तीमें जाना ही छोड़ दिया—वह अकेला जंगल की कुटीमें रहने लगा। संसारमें ऐसे पुरुष दो ही चार हुए हैं।

* * * * *

जातीय सेनाका स्वामी बनकर जब वह लम्बार्डी में गया था, उस समय उसने जो घोषणापत्र प्रकट किया था, वह उसी के हृदयकी भाषामें लिखा था। उसने लिखा था—"लम्बार्डीके निवासियो! नवीन जीवन प्राप्त करनेके लिए तुम्हारी बुलाहट है। आशा है, अपने पूर्वपुरुषोंके समान तुम भी रणमें अमर कीर्त्ति कमाओगे। इस बार भी भीषण घातक आस्ट्रियन ही शत्रु हैं। इटलीके अन्यान्य प्रदेशस्थ तुम्हारे भाइयोंने एक स्वरसे प्रतिज्ञा की है कि, या तो वे युद्धमें जय प्राप्त करेंगे और नहीं तो प्राण परित्याग। आओ, तुम भी उसी प्रतिज्ञामें बद्ध हो। हमें आज बीस पीढ़ियोंके दासत्व और अत्याचार का बदला लेना है। जातीय साम्राज्य को विदेशियोंकी गुलामीसे छुड़ाकर—इसे पवित्र निष्कलङ्क बनाकर—हमें अगली पीढ़ीके हाथमें

देना है। सम्पूर्ण जातिने विक्टर इमैनुएलको अपना नेता बनाया है और उसने इस कार्यके लिये मुझे चुनकर भेजा है। उस की इच्छा है कि, आप लोग इस जातीय स्वाधीनता के लिए कमर कसकर तैयार हों। जिस पवित्र कार्यका भार मुझ पर दिया गया है, उसके लिए मैं आपसबोंसे प्रस्तुत हूं। इससे मैं अपने आपको विशेष गौरवान्वित समझता हूं। आइयो! अब देर क्यों? उठो, हथियार पकड़ो। इटली की स्वाधीनता का सूर्य गुलामीके मेघमें ढका रहा है। आप लोगोंके पौरुषसे वह छिन्न भिन्न होगा। जो पुरुष हथियार पकड़ने योग्य होकर भी घरमें बैठा रहेगा—वह जातिका विश्वासघाती माना जायगा। जिस दिन इटली के पैरसे पराधीनता की बेड़ियां टूट जायँगी—जिस दिन स्वाधीन होकर भाई बहन, पुत्र कन्या एकत्र होंगे—वही दिन इटली के इतिहासमें स्वर्ण-दिन होगा। योरुपकी अन्यान्य जाति-योंके बराबर इटली जिस दिन अपना आसन अधिकार कर लेगी, उसी दिन इटलीका जीवन सफल होगा।"

स्वदेश-प्रेमीकी इस हार्दिक बुलाहटसे कौन वीर घरमें बैठ सकता था?" प्रत्येक प्रान्तसे असंख्य इटालियन उठ खड़े हुए और उन्होंने आस्ट्रियनोंको निकाल कर दम लिया। उस समय इटालियन युवकोंने सम्प्रदाय का मोह—घर-बारका प्रेम—प्राणोंकी माया त्यागकर स्वदेशका उद्धार किया। सम्पूर्ण इटली मानो रणोन्मत्त हो उठी। उस भीषण मूर्तिके

सामने आष्ट्रिया कैसे ठहर सकता था? बहुत दिनोंके बाद इटली फिर स्वाधीन हुई।

१८८२ ई० की २ री जूनको, इस महापुरुषने यह लोक त्याग कर परलोकका रास्ता लिया। समस्त इटली हतज्ञान होगई। जिस इटलीमें उसने नवीन प्राणोंका संचार किया था—आज उसके विरहमें वही इटली हतप्राण होगई। जिस देह के अमित बलसे एक दिन प्रमत्त आष्ट्रियन जाति धूलिकणाके समान फेंक दी गई थी, वही वीर देह २ री जूनको काप्रेरा द्वीपकी मृत्तिकामें समाधिस्थ कर दिया गया। ११ वीं जूनको समस्त इटलीवासियोंने मिलकर गैरीबाल्डीकी श्वेत प्रस्तर-मूर्त्ति स्थापन की। जैसा आत्मोत्सर्ग वैसीही प्रतिष्ठा। इस आत्मोत्सर्गकी प्रतिष्ठा करके ही भारतवासी तैंतीस कोटि देवताओंके उपासक बन गये। जिस जगन्नाथके रथका रस्सा छूजाने मात्रसे हिन्दू स्वर्गफल मानते हैं—जिसके रथके नीचे कुचल जाना अपना अहोभाग्य समझते हैं—यह जगन्नाथ कोई देवता नहीं थे—एक प्रसिद्ध बौद्ध प्रचारक थे। बौद्ध-मन्दिरोंमें जो श्वेत प्रस्तर-मूर्त्ति दीखती है—वे भी कोई देवता न थे—यह कपिलवस्तु नगरके अधीश्वर जगदाराध्य महाप्राण शाक्यसिंह थे। जैन-मन्दिरोंमें विराजमान मूर्त्तिकामी छविपूर्ण महावीर स्वामी भी देवता न थे—ये भी राजपुत्र—दयामय विश्वप्रेमी थे। राम, कृष्ण, बलदेव—कोई भी देवता न थे—सबके आत्मोत्सर्ग पर मोहित होकर उनकी प्रस्तर-

प्रतिमाएँ स्थापित की गई हैं। संसारमें मूर्ति-पूजापर चाहे कोई कुछ भी कहे, किन्तु जिसके हृदयमें भक्ति, प्रेम और कृतज्ञता है वह अपने मनके सिंहासन पर उनकी पूजा किये बिना नहीं रह सकता। उसे आदर्श पुरुष और आदर्श रमणीके निकट मस्तक झुकाना ही होगा। किन्तु हिन्दुओंसे मनुष्यमें ईश्वर कल्पना किये बिना न रहा गया—अति गुण देखकर उन्होंने मनुष्य को ईश्वर कह दिया। किन्तु मेरे मतमें ईश्वर मनुष्य-जन्म नहीं ग्रहण करता—हाँ; ज्ञान, ध्यान और क्रिया-बलसे मनुष्य ईश्वरत्व प्राप्त करता है।

जिसने अपने स्वार्थके लिए कुछ भी न करके-आजन्म स्वदेश और स्वजातिका भाग किया—क्या वह कभी हृदयसे भूला जा सकता है? उसका स्मरण आते ही क्या हृदय और मन पुलकित नहीं हो उठता? उसकी छवि सामने आते ही क्या भक्ति सहित मस्तक अवनत नहीं हो जाता? पत्थर पूजना अवन्ध्यता है—किन्तु उन महापुरुषोंके प्रति भरी हुई श्रद्धा हृदयसे कदापि भिन्न नहीं की जा सकती। गैरीबाल्डी को संसार कैसे भूल सकता है? वालेसको कैसे भूल सकता है? इटलीके दीक्षागुरु महात्मा मेज़िनीको विश्व कैसे भूल सकता है? जिस मेज़िनीने जन्मभर इटलीकी माला फेरी, जो मेज़िनी जन्मभर इटलीकी स्वाधीनता के लिए जङ्गलों और पहाड़ों की धूल छानता फिरा, जिस मेज़िनीके सम्बन्ध में आयरमूल

इटलीमें हज़ार-हज़ार गेरीबाल्डी पैदा हुए—वह संन्यासी मेज़िनी कैसे भुलाया जा सकता है?

मेज़िनी की उद्दीपना से लाख-लाख इटालियनोंका रुका हुआ रक्तस्रोत उनकी धमनियोंमें बिजलीके वेगकी तरह दौड़ पड़ा। उसके प्रदीप्त जीवनके अद्भुत आत्मत्यागके दृष्टान्त से हज़ार-हज़ार इटालियन युवक जनक-जननी और दारा-सुत परित्याग करके संन्यासी बने थे। उसके मन्त्रकी मोहिनी शक्तिके बलसे अशिक्षित वा अर्द्धशिक्षित और साधारण किसान भी स्वजाति-प्रेममें आत्मविसर्जन करना सीखे थे। उसके मन्त्र से दीक्षित युवक वीरकी तरह खड़े रहकर गोलोंका निशाना बने थे, किन्तु उन्होंने मेज़िनीके दीक्षामन्त्र और दीक्षितों का नाम प्रकट नहीं किया। जिसके चरित्र-गौरव पर मोहित होकर, झुण्डके झुण्ड इटालियन युवक अपनी जन्मभूमि त्यागकर, उसके मार्सेल वाले निवासमें आते थे—केवल इटालियन ही क्यों, उसके विश्वप्रेमके मन्त्रमें दीक्षित होनेके लिये पोलैण्ड, रशिया, जर्मनी, स्विज़रलैण्ड और फ्रेञ्च स्वाधीनताप्रिय युवक आते थे। वह जगत्‌गुरु संसार का शिक्षक था—वह संसारका संजीवक महाप्राण था। जो गेरीबाल्डी का दीक्षागुरु—गैरीबाल्डीके सब साथियोंका मन्त्रगुरु—जिसने इटलीके लिए, इटलीके उद्धार की कामना से जन्मभर ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया—जिसने इटलीके शोकमें जन्म भर काले कपड़े धारण किये—जो विद्यार्थी दशामें इटलीकी भूत-भविष्यत

दशा सोचकर घण्टों सिसक-सिसक कर रोता रहता था, इटलीके उद्धारका उपाय सोचते-सोचते जिस की तमाम रात आँखोंमें होकर निकल जाती थी—व्यावहारिक जीवन में उत्तीर्ण होकर भी जिसने इटलीके उद्धार की कामनाके आगे अपने लिए कभी दो पैसेकी चिन्ता नहीं की—जो पिताकी अतुल सम्पत्तिका एकमात्र उत्तराधिकारी होनेपर भी, इटली के उद्धारकी इच्छासे, दारिद्र्यव्रती बना—जिसने उस बड़े भारी व्रतकी उद्यापनामें जेलखानेके कष्टको सुख-शय्या समझा, देशनिकालेको मुक्ति माना—देशनिकाले की दशामें फ्रेंच गवर्नमेण्टसे तंग आकर, जो दिनभर जङ्गली जानवरोंकी तरह छिपा रहता था और रातको निकलकर अपने उसी ज्वालापूर्ण निबन्ध 'नवीन इटली' नामक पत्रमें छापकर, अपने असंख्य शिष्यों द्वारा इटली भरमें बँटवा देता था—जिसकी कलमने दुर्दान्त आष्ट्रियाके तमाम यत्न को निष्फल कर दिया था—फ्रान्स के सिंहासन को मटियामेट कर दिया था—जिसकी ज्वालामय कलम यदि इटलीको उभड़ने से तैयार न करती, तो उद्धार गैरीबाल्डी भी इटलीका उद्धार न कर पाते—उसे खाते-पीते, सोते-जागते, देशनिकालेमें और देशमें, इटलीके उद्धारके सिवाय और कुछ दीखता ही न था। विफल भी होकर भी मेज़िनी इटलीका भक्त था—एक-एक पत्थर उसने मौतको गले लगाया—आत्मोत्सर्ग का वह दृष्टान्तस्वरूप महात्मा मेज़िनी संसारका पूज्य है। मेज़िनी साधारणतया एक

पाती था—इसलिए राजतान्त्रिक इटलीने उसकी पूजा नहीं की—इसीलिये उस विश्वप्राण महापुरुषकी पूजा नहीं की। किन्तु अबोध इटलीको एक दिन इसका पछतावा करना पड़ेगा, एक दिन इस घोरतर पापका घोरतर प्रायश्चित्त करना ही होगा। मेज़नी इटली को जिस आदर्श पर लेजाना चाहता था, उसपर इटली न गई—पर आज, कल या परसों उसके इच्छित स्थान पर इटली को जाना ही होगा और उस दिन इटली की छाती पर फिर खून बहेगा। इस बार इटली की छाती विदेशियोंके खूनसे भीगी थी, इसलिये उतनी अधिक चिन्ताकी बात न थी, किन्तु अगली बार राजतन्त्री और साधारणतन्त्रियोंमें दोनों ओर इटालियन ही होंगे—दोनों का सम्मिलित रक्त इटली की छाती भिगोयेगा। जब साधारणतन्त्र की जय होगी, तभी इटली महात्मा मेज़नी की पूजा करेगी—गैरीबाल्डी भी पहले साधारणतन्त्री था, किन्तु विक्टर इमेनुएल के गुणों पर मोहित होकर या दूसरा कोई उपाय न देखकर वह राजपक्षी बना। किन्तु मेज़नी का चित्त चुम्बक की सुई की तरह प्रत्येक दशा में एक ही ओर रहा।

देशभक्तिमें मेज़नी का आसन सर्वोच्च है। जो सर्वत्यागी था—जीवनव्रत पूरा न होनेके कारण सम्भवतः स्वर्गमें भी वह सुखी न होगा। ऐसे महापुरुषों का स्मरण करके किसका हृदय भक्ति से नहीं भर जाता? ऐसे महात्माओं की प्रतिमा देखकर किसका मस्तक उनके चरणों पर नहीं झुक सकता?

इसलिये आर्य नर-नारी राम, कृष्णके सामने सिर झुकाते और स्तोत्र बनाकर अपनी भक्तिके उद्गार प्रकट करते हैं। इसीलिये भगवान् महावीर की प्रतिमा पूजी जाती है। इसीलिये गौतम बुद्ध पूजे जाते हैं। पत्थर पूजना व्यर्थ है, किन्तु भक्तिके मर्म को समझना भी महाकठिन है। जिस 'जोन आफ़ आर्क' ने फ्रान्सके लिये प्राण त्याग किये थे, उसकी प्रस्तर-प्रतिमा फौजें सामनेसे जब सेना निकलती है तब अपने निशान झुका लेती है—क्या यह मूर्त्ति-पूजा नहीं है? जिस जार्ज वाशिंगटनने अमेरिका की स्वाधीनता दिलाई—उसकी प्रतिमा को क्या अज्ञानश अमेरिकन नगण्य समझेंगे? प्रत्येक माता जब अपने बच्चों को उँगली से दिखाकर कहती है "यह देश का पिता है" उस समय बच्चे उसे पाषाण-प्रतिमा या सजीवताको समझते होंगे? प्रत्येक अमेरिकनको महापुरुष वाशिङ्गटन पर श्रद्धा है—अतः अमेरिका वाशिंगटन की पूजा करता है। इसी महापुरुष की संक्षिप्त जीवनी सुनाकर हम इस निबन्ध को समाप्त करते हैं।

जो सब अँगरेज़-परिवार ब्रटिश-सिंहके अत्याचार से उत्पी-ड़ित होकर स्वदेश की ममता त्याग एटलाण्टिक महासागरके पश्चिमी किनारे पर आ बसे थे, वाशिंगटन के पूर्वपुरुष भी उन्हींमें से एक थे। १६५७ ई० में वाशिंगटनवंश ने वर्जि-नियामें आकर बस्ती की थी। वाशिंगटन के पिताने मेरीबॉल

में अच्छी सम्पत्ति कमाई थी और मृत्यु-समय उसे अपने छ: पुत्रों में बाँट दी।

वाशिंगटन अपने पिता का तीसरा पुत्र था। १७३२ ई० की २२ वीं फ़रवरी को इसका जन्म हुआ था। पिता की मृत्यु के समय उसकी आयु इक्कीस वर्ष की थी। मेरीलेण्ड की किसी साधारण पाठशालामें उसकी शिक्षा हुई थी। किन्तु वह त्रिकोणमिति और ज्यामितिमें विशेष दक्ष था। पाठशाला छोड़कर वह एकाग्रमनसे गणित और विज्ञान की आलोचनामें लगा। वह शीतकालमें अपने भाई के मकान पर दिन बिता रहा था, जो वार्नेर पर्वत पर था—उसी समय लार्ड फेरीफाक्स का चित्त उसकी ओर आकृष्ट हुआ। लार्ड फेरीफाक्सने ज्यामिति और त्रिकोणमिति में उसे विशेष दक्ष देखकर 'पटोमा' नदी के तीरवर्ती विशाल भूमिखण्ड की माप का काम उसके अधीन कर दिया। उसने इस कार्य को इतनी बुद्धिमत्ता और दक्षता से किया, कि शीघ्र ही वह गवर्नमेण्ट के सर्वेयर के पद पर नियुक्त होगया। इस कार्य के करने में उसे लगातार तीन वर्ष तक जङ्गलों, पहाड़ों और नदियों के किनारों पर घूमना पड़ा। इस समय प्रायः सभी अमेरिकन राजतान्त्रिक थे और वाशिंगटन की राजभक्ति भी अचल थी।

इसी समय आशङ्का हुई कि, युनाइटेड स्टेट्स की सीमा पर अमेरिका के आदिम निवासी आक्रमण करेंगे—दूसरी ओर

योरुप में फ्रान्स और इंगलैण्ड का युद्ध ठनने की सम्भावना मालूम होने लगी—इसलिये भावी विपत्ति से बचने के लिये अमेरिकामें प्रदेश-विभाग हुआ। एक प्रदेश की सेना का मेजर वाशिंगटन भी बनाया गया। १७५४ ई० में, उसे वर्जिनिया की सेना के द्वितीय अधिनायक का पद मिला। इसी अवसर पर अंगरेजों का फ्रेञ्चों से युद्ध ठन गया। अमेरिकामें भी दोनों ही थे, इसलिये वहाँ भी युद्ध अनिवार्य था। वाशिंगटन को फ्रेञ्च सेनापति जुमनभिल का सामना करना पड़ा। इस युद्धमें फ्रेञ्च सेना हार गई और फ्रेञ्च सेनापति घायल हो गया। इस विजयके कारण वर्जिनिया की व्यवस्थापक सभाने उसे धन्यवाद दिया और प्रधान सेनापति के पद पर वह सुशोभित किया गया। इस पद पर रहते हुए उसने अपनी सेना को इस दक्षता से पीछे हटाया कि, बहुतेरी फ्रेञ्च सेना उसकी सेना को कुछ भी हानि न पहुँचा सकी. इस रणकौशलताके उपलक्ष्य में वर्जिनिया-व्यवस्थापक सभाने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

१७५५ ई० में, सेनापति ब्राडक के साथ वह युद्धमें संयुक्त हुआ। इस युद्धमें उसकी पराजय और मृत्यु हुई। वाशिंगटन अपने पर्वतस्थ घरमें लौट आया। इसी समय उसके भाई लारेन्स की मृत्यु हुई और उसकी यावत् सम्पत्ति का उत्तरा-धिकारी वाशिङ्गटन बना। इस सम्पत्ति को पाकर वह अपना मनमाना अतिथि-व्रत पालने लगा। अमेरिकाके उस समयके

अँगरेज़ अतिथि-सत्कार करनेमें प्रसिद्ध थे। वाशिङ्गटनका घराना तो इसके लिये बहुत ही विख्यात था। १७५९ ई० में, वाशिङ्गटनने एक विधवा रमणी से अपना विवाह कर लिया।

इस समय वह बिपुल सम्पत्ति का स्वामी और गण्यमान्य होगया था। ऐसे सुख और स्वच्छन्दतामें उसके बहुत दिन बीत गये। जिन उज्ज्वल गुणोंके कारण पीछे से उसकी कीर्ति अमर हुई, उनका आभास उसके इतने जीवनमें कहीं भी नहीं मिलता। जिन कारणों से उस जातीय स्वाधीनता के संग्राम की उत्पत्ति हुई, उनका कुछ वर्णन कर देना इस अव-सर पर अनुचित न होगा।

अमेरिकाके आदिम निवासियों और फ्रेञ्चोंके साथ युद्ध करने में यूनाइटेड स्टेट्स की विशेष हानि हुई थी। प्रसिद्ध सेनापति उल्फ इस युद्धमें काम आये थे। प्रायः तीस हज़ार जातीय सैनिक भी मारे गये थे। जातीय ऋण चालीस करोड़ होगया था। इस युद्धमें आंशिक व्ययके कारण इँग-लैण्ड को पचहत्तर करोड़ का क़र्ज़दार होना पड़ा था। साथ ही शान्तिरक्षा के लिये स्थायी सेना का प्रबन्ध करना पड़ा था।

जब युद्ध का कोलाहल बन्द हुआ—बन्दूकों की आवाज़ ठण्डी पड़ी—आहत वीरोंने समाधिमें शयन किया—घायलोंने लौटकर घरवालों को आनन्दित किया—पार्वती सेनाने आदिम निवासियों को खोज खोजकर उन्हें अधीन कर लिया—चारों ओर शान्ति होगई, तब इँगलैण्ड और अमे

रखाने सोचने का समय पाकर अपने नुकसान का चिट्ठा लिखना शुरू किया। नुकसान मिलाने पर उन्हें दीखा कि, यद्यपि जीत तो होगई—विजय-गौरव से संसार की आँखें चकाचौंध करदी—पर फिर भी लाभ नहीं हुआ, वे असीम जातीय धन और जातीय रक्त बहाकर कमज़ोर होगये। इंग्लैण्डने यह मौका अच्छा समझकर अमेरिका से कर्ज़ का रुपया देने की प्रार्थना की।

लड़ाई के खर्च के मारे अमेरिका भी कंगाल होगया था। इसलिये इंगलैण्ड की इस बातसे उसे दुःख हुआ। उन्होंने देखा कि अपनी जाति का खून और सोना बहाकर यह विजय ली है। किन्तु इंगलैण्डने थोड़ी सी मदद देकर पूरा यश कमाया। इतने पर भी उसकी दुराकांक्षा पूरी नहीं होती। उसने अमेरिका पर नये टैक्स लगाकर अपनी कमी पूरी करनी चाही। अमेरिका अब तक अपने आपको कमज़ोर समझता था, इसलिये इंगलैण्डकी सब बातें सिर झुका कर मानता था। किन्तु इस युद्धमें उसे मालूम होगया कि, मैं कमज़ोर नहीं हूँ। इसलिये इंगलैण्ड की बातें उसे अत्याचार मालूम होने लगीं। इस युद्धमें उपनिवेशोंने भी खूब सहायता दी थी। उन्होंने देखा था कि, अँगरेज़ी सेना से यहाँ की सेनाने अच्छा ही काम किया था। विशेषतः वे युद्धके ऐसे अभ्यासी हो गये थे कि, युद्धका बन्द होना उन्हें कुछ बुरा लगा। पहले वे युद्ध से डरते थे, किन्तु करते-करते उन्हें युद्ध एक खेल

मालूम होने लगा । इसलिये इँगलैण्ड की आज्ञामें वे आपत्ति करने लगे ।

उपनिवेशवालोंने देखा कि, इँगलैण्ड अमेरिकाको अपनी फौजी पाठशाला बना रखा है । सरहद वालोंसे अकारण युद्ध ठान कर अपने लोगों को इँगलैण्ड युद्ध-विद्यामें दक्ष कर रहा है—पर इससे अमेरिका का पटरा हुआ जारहा है । अब अमेरिका ने अपना बल समझ लिया, इसीलिये उसे यह बात असह्य हो उठी ।

इङ्गलैण्ड को मन ही मन यह अभिमान था कि, अमेरिका के उपनिवेश उसकी सन्तान हैं—उसीके यत्न से वे प्रतिष्ठित हुए हैं—आदर से बढ़े हैं—और बाहुबल से रक्षित हैं । युनाइटेड स्टेट्स के कोषाध्यक्षने इस अभिमानके उत्तरमें लिख भेजा था,—"इङ्गलैण्ड, तुम कहते सुने जाते हो कि, हम तुम्हारे यत्न से स्थापित हुए हैं ; किन्तु यह बात अलीक और भ्रम है—किंवा—तुम्हारे ही दौरात्म्यसे हम अमेरिकामें आ बसे हैं । तुम कहते हो, तुम्हारे आदर से हम बढ़े हैं—किन्तु नहीं, तुम्हारी अवहेला से हम पुष्ट हुए हैं । तुम अपनी आशा में कह सकते हो कि, हम तुम्हारे ही बाहुबलसे रक्षित हैं—किन्तु नहीं, तुम्हारे गौरव की रक्षा करनेमें ही हमारा रक्त और धन खर्च हुआ है ।"

इस समय सर्वसाधारण का इङ्गलैण्ड के प्रति ऐसा ही भाव होगया था । अमेरिकाके आदिम औपनिवेशिक पक्षमें भी

से प्रजासत्तात्मक राज्यके अनुयायी थे। राजा को ईश्वर का अंश मानना वे नहीं जानते थे। वे संख्यामें कम थे और अस्त्र-शस्त्र भी उतने अच्छे न थे, इसलिये इङ्गलैण्डका आधिपत्य उन्होंने स्वीकार कर लिया था, किन्तु उनको अपनेमें जैसे ही आत्मबल का परिचय पाया, वैसे ही वे फिर स्वाधीन बनने का यत्न करने लगे।

इधर इङ्गलैण्ड सोचने लगा कि, अमेरिका एक उपनिवेश ही तो है—वह सब बातोंमें अपने मातृदेश का मुखापेक्षी है—फिर उसको यह आज्ञा का पालन क्यों न करेगा? इसलिये क़ानून पर क़ानून बनाकर वे अमेरिका को चारों ओर से जकड़ने लगे। एक क़ानून यह बना कि, कोई इङ्गलैण्ड के जहाज़ों के सिवाय और किसी देश के जहाज़ोंमें माल न मँगा सकेगा और न ला सकेगा। इस नियम से इङ्गलैण्ड के जहाज़ों के मालिक खूब धनवान बन गये। और कई ऐसे ही क़ानून प्रचलित हुए। एक नियम यह निकला कि, जिस लकड़ी के जहाज़ बनते हैं वह अपनी सीमा से बाहर कोई न काट सकेगा। कोई लोहे का कारख़ाना न बना सकेगा। इस्पात कोई न तैयार कर सकेगा। जहाँ ऊन आदि अधिक होती है, वहाँ कोई उसकी टोपियाँ न तैयार कर सकेगा। कोई कारबारी या दूकानदार एक साथ दो मुनीम से अधिक न रख सकेगा। इङ्गलैण्ड की बनी हुई शराब और चीनी को खपत वहाँ करनेके लिये क़ानून के द्वारा अमेरिका

की टेनीचीना, शराब और गुड़ पर अधिक टेक्स लगाया गया। ये आईन कड़ाई से काममें लानेके लिये, जिस किसी पर शक होता उसीके घर की तलाशी की जाने लगी। इन सब क़ानूनों से लोग तङ्ग आही रहे थे। इसी समय १७६० ई० में, स्टैम्प आईन बना। इससे पहले अर्ज़ी दावे सब सादे कागज़ों पर किये जाते थे, पर इस क़ानून से सब को सादे कागज़ की जगह स्टैम्प लगा हुआ कागज़ काममें लाना पड़ेगा। अख़बार, मासिक पत्र, आदि पर भी शुल्क निश्चित किया गया। इस क़ानून का मसौदा मालूम होने पर, अमेरिका वालों का क्रोध जाग उठा। सबने मुक्तकण्ठसे इसकी निन्दा की,—किन्तु इङ्गलैण्ड ख़र जार्ज किसी प्रकार विचलित होने वाले न थे। उनके प्रभाव से यह स्टैम्प आईन पार्लिमेण्टके दोनों भवनों से पास होगया। अमेरिकामें विद्रोह खड़ा होने की सम्भावना से, इस आईन के साथही एक 'विद्रोह-आईन' भी पास होगया। इस क़ानूनके अनुसार यदि अमेरिकावाले विद्रोह करें, तो इङ्गलैण्ड से फौज भेजी जानी निश्चित हुई और उस फौज के लिये अमेरिका वाले कुल खर्च देवें। इङ्गलैण्ड के सिपाहियोंके लिये वे उत्तम निवासस्थान, सुकोमल शय्या, सुमधुर शराबो, शुष्क काष्ठ, सुगन्धित साबुन, सुनिर्मल प्रकाश दण्डस्वरूप दें।

ऐसे कठोर क़ानून के प्रचारसे बैंजमिन फ्रैंकलिन जैसे मनीषि का भी हृदय कांप उठा। उसने अपने एक मित्रको

लिखा था—"अमेरिका का स्वाधीनता सूर्य चिरकालके लिये अस्त होगया। इस समय हमें अत्यधिक परिश्रम और कम-खर्ची के सिवाय और किसी का सहारा नहीं है।" उत्तरमें उसके साहसी मित्रने लिख भेजा था—"इस समय हमें और ही प्रकार का सहारा लेना पड़ेगा।" सचमुच थोड़े समय पीछे ही अमेरिका को औरही प्रकार का सहारा लेना पड़ा।

इस समय एक अनुभवी और वृद्ध अँगरेज़ न्यूयार्क नगरका गवर्नर था। वह सदाचारी और उदार प्रकृति का था। इसकी समिति के और सभ्य भी उदार प्रकृतिवाले थे। ऐसी उदार समिति और दयालु गवर्नर होने पर भी, जब यह राज-शासन के अनुरोध से प्रजाके उत्थानके प्रतिकूल खड़ा हुआ, तब लोग इसे स्वाधीनता का शत्रु कहने लगे। इतिहासमें इसका नाम कलङ्कित कर दिया गया। स्वाधीनपक्ष वाले लोगों का ज़ोर दिन पर दिन बढ़ने लगा। निर्भय होकर समाचार-पत्र अमेरिका की स्वाधीनता की घोषणा करने लगे। वे खुले-दहाड़े कहने लगे कि, इङ्गलैण्ड के साथ सम्बन्ध तोड़ना अब अत्यावश्यक होगया है। १ लो नवम्बर स्टैम्प-आईन के प्रचार का दिन था। वह दिन जितनाही निकट आने लगा, उतनेही अधिक अमेरिकावासी अधीर होने लगे। जगह-जगह सभाएँ होने लगीं, रास्ते मुहल्लों और चौकोंमें झुण्डके झुण्ड लोग जमा होने लगे। आबालवृद्धवनिता सब स्वदेशके लिये स्वाधीनता

के लिये, प्राण देनेको दृढ़प्रतिज्ञ हुए। स्वदेशप्रेम और स्वजाति-प्रेम मनुष्यसे क्या नहीं करवा लेता?

३१ वीं अक्टूबर को एक बड़ी भारी सभा हुई। इस सभा से स्टैम्प-आईनके विरुद्ध पार्लिमेण्टमें एक प्रार्थनापत्र भेजा गया। देशके सब बड़े-बड़े आदमियोंने इस पर हस्ताक्षर किये। जेम्स हूवेरम नामक एक व्यक्ति स्टैम्प प्रचार करने के लिये आया था। यह दशा देखकर उसे काम छोड़कर इङ्गलैण्ड चला जाना पड़ा।

न्यूयार्क के किले का नाम फोर्ट सेण्ट जार्ज था। २३ वीं अक्टूबर को, इङ्गलैण्ड से स्टैम्प लाकर इसी किलेमें रक्खे गये। यह किला जहाँ से टूटा फूटा था वहाँ से मरम्मत कर सुधारा गया। इसकी रक्षा करनेके लिये फौज भी अधिक बढ़ाई गई। किले की सब तोपों का मुँह शहर की ओर कर दिया गया और सब ब्रिटिश लड़ाके जहाज़ तैयार होकर न्यूयार्क के बन्दर पर आ लगे। उस समय न्यूयार्क फौजसे घिरे हुए नगर के समान होगया। किन्तु इससे ज़रा भी न डर कर अमेरिका वाले झुण्डके झुण्ड आकर एकत्र होने लगे। जिसे जो शस्त्र मिला, वह वही लिये हुए नगर की ओर दौड़ा चला आया। किले पर चढ़ाई हुई, अँगरेज़ी तोपें मन्त्रोषधिरुद्ध-वीर्य सर्प की तरह अकर्मण्य होगईं। शत्रु होने पर भी इतने मनुष्यों पर गोला चलानेमें अँगरेज़ सेनापति का हृदय व्यथित हो उठा। थोड़ी ही देरमें किलेके चारों ओर इतने विद्रोही

होगये कि, विवश होकर अंगरेजों को मुँह के बल पड़े। ब्रिटिश पार्लिमेण्ट को भी मुँह बाढ़ेन रद करना पड़ा। पर शीघ्र ही एक और नया क़ानून बना—जो पहले में वैसा ही था। इस क़ानून के द्वारा शीशे, काग़ज़ और विभिन्न वस्तु पर टैक्स लगाया गया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनीको आज्ञा दीगई कि वह जो चाय अमेरिका भेजे, उस पर उसे प्रति पाउण्ड तीन पैसे टैक्स देना पड़ेगा। पर अमेरिका वालोंने प्रतिज्ञा की, कि हम ऐसी चाय अपने यहाँ उतरने ही न देंगे।

प्रोविडेन्स प्रदेशके निवासी ही सबसे प्रथम इस चायके खिलाफ़ खड़े हुए। एक दिन शहरवालोंने ढोंडी पीट दी कि, 'जिसके घरमें जितनी चाय हो, वह लेकर बाज़ारमें आवे—रातके दस बजेके समय चायका महायज्ञ होगा।' जिन जिन के पास चाय थी, वे सब लेकर निश्चित स्थान पर जा पहुँचे। रात को दस बजे सबकी चायका बड़ा भारी ढेर लगाया गया और उसमें आग लगा दी गई। धक-धक करके चाय जल गई। लोगों ने प्रतिज्ञा की, कि किसीको बाज़ारमें चाय अब न लाने देंगे। यदि कोई अँगरेज़ शस्त्रधारी पुलिस की सहायता से चाय लाकर गोदाममें रखता, तो कोई अमेरिकन रातको लुक-छिप कर उसमें आग लगा देता था, जिससे सब भस्म होजाती थी। चार जहाज़ चायसे भरकर इङ्गलैण्डसे आये, पर फिलेडेलफिया नगरके बन्दरमें घुसकर चाय उतारने की

उनकी हिम्मत न पड़ी। वे जैसे आये थे, वैसेही वापिस इङ्गलैण्ड लौट गये। एक दूसरे जहाज़से फौजकी मददसे न्यूयार्क बन्दर पर चाय उतारी गई थी—पर किसीने एक पैसे की भी न खरीदी। क्योंकि शहरवालोंने नोटिस लगा दिये थे कि, जो चाय खरीदेगा उसका सिर धड़से न्यारा कर दिया जायगा। चार्लस टाउनमें भी फौजकी मददसे चाय उतारी गई, पर किसीने न खरीदी—अन्तमें गुदाममें पड़ी रही। एक दिन किसीने उसमें आग लगादी। बोस्टन नगरमें ही सबसे अधिक गड़बड़ मची। यहाँ गवर्नरके मित्रोंने उनके लिए चाय भेजी थी। लोगोंको खबर लग गई। वे सब प्रतिज्ञा करने लगे कि, अमेरिका की भूमि पर कभी चाय न उतरने दी जाय। एक चाँदनी रातको चार जहाज़ बोस्टन बन्दर पर आ लगे। जहाज़ जैसे ही बन्दर पर आये, वैसे ही तीन सौ बोस्टनवासी विद्यार्थी धड़ाधड़ जहाज़ोंपर चढ़ गये और जितने चायके बॉक्स थे, वे सब तोड़ फोड़कर समुद्रमें फेंक दिये। रक्षकोंने पहले बाधा दी, पर जब विद्यार्थियोंने गोलियाँ चला-नी शुरू कीं, तब वे चुपचाप तमाशा देखने लगे। इस प्रकार तीन सौ बत्तीस चायके बक्स नाश कर दिये गये।

इस बार इङ्गलैण्ड गरज उठा। इस समाचारके पहुँचते ही स्थिर किया गया कि—चाहे जैसे हो, उपनिवेशमें अँगरेज़-प्रभुता और क़ानून की मर्यादा रखनी ही होगी। बोस्टनका नाश करना निश्चित हुआ। इधर समस्त अमेरिकाकी सहानु

भूमि बोस्टन से होगई। सब लोग इस नगरसे उस नगरको जाने लगे। चारों ओर असन्तोष और विराग दीखने लगा। बहुत दिनोंके रुके हुए क्रोध, मत्सर और स्वाधीनताकी इच्छाने मानो सब अमेरिकावालोंको एक शरीर बना दिया और वे अँगरेज़ोंके विरुद्ध उठने लगे।

बोस्टन में एक घटना और घटी, जिससे भी लोग उत्तेजित हो उठे। एक दिन अँगरेज़ सिपाहियोंसे नगरवासियों की मारामारी होगई—इसमें जातीय रक्त भी गिरा। सफ़ेद बर्फ़ पर लाल रक्त लोगोंसे न देखा गया। इस बातसे समस्त अमेरिकाका खून खौलने लगा। इङ्गलैण्डकी न्यायपरता, जातीय गौरव, मनुष्यत्व मानो एटलाण्टिक सागरमें डूब गया। एक स्वरसे अमेरिकाने इस घटनाका प्रतिवाद किया। उसकी आवाज़ एटलाण्टिक पार करती हुई इङ्गलैण्ड तक पहुँची। पर इङ्गलैण्ड का हृदय न पसीजा। उसने अमेरिका की स्वाधीनताका नाश करनेकी प्रतिज्ञा करली। पार्लिमेण्टके दोनों भवनोंने महाराज तीसरे जार्ज को सलाह दी कि, अमेरिका बहुत दिनोंसे स्वाधीन बननेकी कोशिश कर रहा है—वह केवल ताकत और मौक़े की बाट जोह रहा है। इस समय उस बालकी स्वाधीनताको जड़से खोदनेमें ही प्राण देना प्रत्येक अँगरेज़का धर्म है—नहीं, पीछे बड़ा होकर वह दुःख देगी।

इधर अमेरिकावासी स्वाधीन बननेके लिए दृढ़प्रतिज्ञ

हो गये। इङ्गलैण्डसे भयानक मेघ उठता देखकर उन्होंने निश्चय कर लिया कि, यह हमारे यहाँ बरसेगा। इसलिए स्थान-स्थान पर जातीय सभाएँ होने लगीं। सब जी खोलकर चन्दा देने लगे। झुण्डके झुण्ड सेनामें नाम लिखाने लगे। छोटे बड़े कर्मचारी बनाये जाने लगे। इस अवसर पर सबने जार्ज वाशिंगटनको सेनापति बनाया। अमेरिकाने अबतक बहुतसे कोमल उपायोंसे काम लिया, किन्तु कुछ होते न देख कर, अन्तमें सच्चा निपटारा करनेवाली तलवार म्यानसे बाहर निकाली।

फिलडेलफियामें जातीय सभाका एक बड़ा भारी अधिवेशन हुआ। अमेरिकावालोंने खुल्लमखुल्ला अब भी इङ्गलैण्डके विरुद्ध युद्ध-घोषणा न की। हाँ, वे शीघ्रताके साथ रुपया एकत्र करने लगे।

उस समय बोस्टन नगरमें गेज नामक एक अङ्गरेज सेनापति सेना सहित मौजूद था। अमेरिकावालोंको डर था कि, कहीं वह अपनी सेना लेकर गाँवमें न घुस आवे, इसलिए उसे बोस्टन नगरमें घेरना इन्होंने निश्चित किया। वाशिंगटन के हाथ ही यह काम दिया गया। जब अङ्गरेजोंको यह खबर लगी कि, अमेरिकावाले बोस्टन घेरेंगे तब उन्हें आश्चर्यके साथ हँसी आई। वे अमेरिकावालोंको स्त्रियोंके समान निर्बल समझते थे। फिर उन्हें यह भी अभिमान था कि, उनके पास खाने-पीनेको यथेष्ट सामग्री है—ऐसी दशामें वे घेरकर भी

आराम लेंगे। दूसरे अङ्गरेज सेनापति होउका भी यही विश्वास था। इन्हीं दिनोंके भीतर, सब अङ्गरेज नाच-कूद और खेल-तमाशोंमें लगे रहे। चारों ओर गाना नाच और हँसी-मज़ाकके नाटकोंकी धूम मच गई। एक अङ्गरेजने एक मज़ाकिया नाटक बनाया था, जिसमें अमेरिकावालोंके द्वारा बोस्टन नगरका घेरना दिखाया था। यह नाटक उस रातको खेला जा रहा था। एक लड़केके मारे हुए कामको सुन्फीवालोंकी जैसी टोपी पहनाकर वाशिंगटन बनाया था, उसकी कमरमें तीन जगहसे मुड़ा हुआ एक लोहेका टुकड़ा तलवारकी जगह बँधा था--फौजकी जगह उसके साथ केवल एक टूटे जूते और फटी वर्दीवाला बदशक्ल सिपाही बनाया था। वह एक पैर आगे चलता था और तीन पैर पीछे गिर पड़ता था। सब अङ्गरेज हँस रहे थे कि, यह वाशिंगटन अङ्गरेजी फौज घेरने आ रहा है। नाटक यहीं तक खेला गया था, इसी समय एक सार्जेण्टने नाटकके स्टेजपर आकर कहा,—"अमेरिकावाले आ रहे हैं।" लोगोंने समझा कि यह भी कोई नाटकका खेल होगा—पर वह सच कह रहा था। सेनापति होउने खड़े होकर कहा—"सचमुच वाशिंगटन सेना लेकर बोस्टन घेरने आगया। मैं आज्ञा देता हूँ, सब सैनिक अपनी-अपनी जगह चले जायँ।" सब मज़ा हँसी देखते-देखते दुःखमें बदल गई। वाशिंगटन तबतक बोस्टन घेर चुका था शीघ्र ही बंकर्सके पर्वतपर दोनों सेनाओंका एक युद्ध भी

होगया, जिसमें जीत अमेरिकावालों ही की हुई। अङ्गरेजोंने वाशिङ्गटनके पास समाचार भेजा कि, जो वह सब सेनाको जहाजोंपर चलो जाने दे, तो वे शहर को बिना किसी प्रकार का नुकसान पहुंचाये जानेको तैयार हैं। वाशिंटन ने यह बात मान ली। १७७६ ई० की १७ वीं मार्च को, अङ्गरेजोंने नगर छोड़कर हैलिफैक्स की ओर यात्रा की।

इस संग्राममें वाशिंगटनने जो अद्भुत रणकौशल और आत्मत्यागके उज्ज्वल दृष्टान्त दिखाये थे, उनका वर्णन इस क्षुद्र निबन्धमें नहीं हो सकता। केवल कुछ प्रधान-प्रधान घटनाओंका नामोल्लेखमात्र करके हम इसे समाप्त करेंगे।

न्यूयार्क यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका का एक प्रधान नगर है। जब यह सुना गया कि अँगरेज उस पर चढ़ाई करेंगे, तब वाशिंगटन उसकी रक्षाके लिये वहां गया। उसके पास केवल १७००० सेना थी। २२ वीं अगस्तको न्यूयार्क के पास ही अँगरेजी सेना उतरी और सीधी अमेरिकन सेना के तम्बुओंकी ओर चल पड़ी। अँगरेजों की आना देखकर अमेरिकन सेना भी उनके सामने चल पड़ी। इसी समय अँगरेज सेना-पति क्लिण्टन ने दूसरी ओर से अँगरेजी सेना लेकर अमेरिकनों पर धावा किया। दोनों ओरसे घिरकर उन्हें भागने का मौका भी न मिला। बीचमें पड़कर अमेरिकन सेना नष्ट होगई। एक हजार के लगभग कैद होगये। बहुत थोड़े वीर भागकर अपनी जान बचा सके

अमेरिका की सेना युद्धमें हारी अवश्य, पर न्यूयार्क वाशिंगटनके ही कब्जेमें रहा। अँगरेज़ सेनाने नगर लेनेकी प्रतिज्ञा की। वाशिङ्गटनने समुद्रके किनारे पर अपनी सेना जमा की,—उसका मतलब यह था कि, अँगरेज़ी सेनाको जहाज़ों से किनारे पर न उतरने दिया जाय। स्वयं वाशिङ्गटन भी दो रेजिमेण्ट लेकर एक ओर से फलाफल देखने लगा। ज्योंही अँगरेज़ी सेना किनारेके पास आई, वैसेही अमेरिकन सेना डर के मारे भाग गई—एक भी बन्दूक न चली। थोड़े से सिपाहियों के साथ अकेला वाशिङ्गटन संग्राम-भूमिमें रह गया। इस कायरता से वाशिङ्गटन इतना विरक्त, दुःखित और हताश हुआ कि, उसने कातर होकर कहा—"ऐसे लोगों से अमेरिका की रक्षा कैसे होगी!" जिस समय वह घोड़े पर चढ़ा हुआ यह बात सोच रहा था, उस समय शत्रु उससे पचास क़दम ही दूर थे। वाशिङ्गटन को रणभूमि छोड़कर जाते हुए दुःख होता था। पर उसके साथियोंने पास ही शत्रु-सेना देखकर उसके घोड़े की बाग मोड़ दी और उसे ज़बरदस्ती वापिस ले गये। दूसरे दिन अँगरेज़ी सेना से एक छोटीसी लड़ाई हुई, जिसमें अमेरिका वाले जीते। इससे उन्हें फिर कुछ आशा हुई। पर अँगरेज़ी सेना संख्यामें अधिक थी। इसलिये हार कर भी उसने शहर ले लिया। वहाँ जो इङ्गलैण्डके पक्षपाती थे, उन्होंने प्रसन्नता से अँगरेज़ी सेना का स्वागत किया। एक रात को शहर में आग लग गई और एक तिहाई शहर जल कर राख होगया।

न्यू यार्क छोड़कर वाशिङ्गटनने हर्लेम नामक नगरमें अपनी छावनी डाली। उसकी सेनाके मुँह निराशा के मारे मुरझा गये। अँगरेज़ी सेनाने इनका पीछा किया। एक-एक पैर पर अमेरिकाकी सेना भागने लगी, अन्तमें नार्थ कासल पर्वत की चोटी पर जाकर अमेरिकन सेना कुछ सुस्ताई। चारों ओर अँगरेज़ी सेना की विजय होने लगी। अँगरेज़ों ने डौंडी पिटवाई कि, जो विद्रोही ६० दिनके भीतर हथियार छोड़ देगा, वह हर तरह से माफ़ कर दिया जायगा।

इस हताशाके समयमें अमेरिका की लाख-लाख आँखें अकेले वाशिङ्गटन की ओर आशा से देख रही थीं। अमेरिका की महासभाने उसे डिक्टेटर के पद पर अभिषिक्त करना सोचा। उसने भी इसे स्वीकार किया। सब काम अवश्य कर रहे थे, पर किसी को कुछ जीतेकी आशा न थी। हाँ, वाशिङ्गटन के हृदयमें एक आशा का चिराग़ अवश्य जल रहा था।

वाशिङ्गटन की सेना की दुर्दशा का कोई ठिकाना न था। किसीके पैरोंमें जूते ही नहीं और किसीके फटे हुए थे। किसीके शरीर पर अच्छा कपड़ा न था। नंगे पैरों और नंगी बदन उन्हें पहाड़ों की बर्फ़ पर भाग कर इधर से उधर जान बचानी पड़ती थी। बिना खाये और बिना सोये उन्हें कई दिन बिताने पड़े थे। स्वयं सेनापति वाशिङ्गटनको अक्सर बिना खाये और बिना सोये रहना पड़ता था। उनके पास अच्छे हथियार न थे और न

उन्हें युद्ध-विद्या सिखाई हो गई थी—इसलिये वाशिङ्गटन अपनी सेना को कभी समतल मैदानमें न ले जाता था। वे दिनभर पहाड़में छिपे रहते और रात को अचानक अँगरेजी सेना पर आ टूटते तथा खाने-पीने की चीजें, हथियार, कपड़ा-लत्ता जो कुछ मिलता सब उठा ले जाते। अमेरिका की महा-सभा फौज को सब सामान देनेमें असमर्थ थी,—इसलिये वे अँगरेजी सेनासे लूटकर सब सामान अपने आपही जुटाते थे। महाराणा प्रतापसिंहके समान वीर वाशिङ्गटन भी अपनी सेना को पर्वत ही पर गांठने लगा। उसने अपनी शक्तिके भरोसे पर इन सब बाधा-विघ्नों को सहा। उसकी सेना धीरे-धीरे निडर होगई और डटकर लड़ना भी उसे आगया। बहुत से नये और अच्छे हथियार भी उसके हाथ लग गये। इतने दिन कष्ट सहनेके बाद वाशिङ्गटनकी सेना आत्मोत्सर्ग के लिये तैयार होगई।

इस प्रकार दारिद्र्यानल पालकर वाशिङ्गटन की सेना जल-स्थलमें एकदम भिड़ गई। और वाशिङ्गटन की हुङ्कारसे कायरों की तरह भागने वाले अमेरिकन डटकर लड़ने लगे। समस्त अमेरिका रणचण्डी का नृत्य-घर बन गया। समुद्री वायु-मण्डलमें स्वाधीन पताका फहराते हुए अँगरेजी जहाजी जहाज अमेरिकन बन्दरोंकी ओर धनुषसे छूटे हुए बाण की तरह दौड़ने लगे। उधर अमेरिकन भयानक तोपें छोड़कर उन्हें रणचण्डी की आकृति बनाने लगे। सफेद पताका फहराते

हुए अँगरेज़ी जहाज़ न्यूयार्क से वर्जिनिया की ओर दौड़ने लगे। सैनिक किनारे पर उतर कर शहर लूटनेके लिये बढ़ने लगे। दुःखी और पीड़ितोंके आर्त्तनादसे आकाश फटने लगा। इसी समय अँगरेज़ी सेना में एक प्रकारका भयानक बुखार फैल गया। दल के दल लोग मरने लगे।

अमेरिकन छिपकर बृटिश सेना पर फायर मारने लगे। उनकी बन्दूकें, वर्दियाँ, रसद सब लूटने लगे। अमेरिकनोंने अँगरेज़ी किले के नीचे सुरङ्ग खोद कर उसमें बारूद भर दी और फिर आग लगा दी—भयानक वज्रनाद से किला उड़ गया। देखते-देखते खेत और रास्ते खून से तर होने लगे। हज़ार-हज़ार बन्दूकों की एक साथ गर्जना होने लगी। चारों ओर धूएँ के बादल छाने लगे। अँगरेज़ी सेना हार कर पीछे भागने लगी। "जय, वाशिङ्गटनकी जय ! स्वाधीन अमेरिका की जय !" से कानोंके पर्दे फटने लगे। इतने दिनके बाद प्रजातन्त्रने राजतन्त्रको हराया। इतने दिनके बाद स्वाधीन अमेरिका का झण्डा उसके किले पर उड़ने लगा। अब स्वाधीन अमेरिकाके साथ इङ्गलैण्ड सुलह करने को तैयार हुआ। जिस अमेरिकाने इङ्गलैण्डके ढेर के ढेर सूत जला-कर राख कर डाले,—इङ्गलैण्डके कई जहाज़ चाय के पानीमें फेंक दिये—अँगरेज़ोंके भयको फूँकोंसे उड़ा दिया—अँगरेज़ोंके अभयदानकी उपेक्षाकी—जिस अमेरिकाने अँगरेज़ी सेनाको पददलित और अँगरेज़ी झण्डे का अपमान किया—अँगरेज़ी

शासन का मूल अमेरिका से सदाके लिये उखाड़ दिया—आज उसी अमेरिका की स्वाधीनताको इङ्गलेण्डने स्वीकार किया। अमेरिका स्वाधीन देश और उसके निवासी स्वाधीन नागरिक हैं—इस प्रस्ताव पर माता ब्रिटानिका को सम्मत होना पड़ा।

इङ्गलेण्डके साथ अमेरिका की सन्धि होगई। पर वाशि-ङ्गटनके जीवन का कर्त्तव्य अभी पूरा नहीं हुआ। उसने पद-दलित अमेरिकाको स्वाधीन जाति बना दिया—रण-पाण्डित्यसे संसारको मोहित कर लिया—संसारको शिक्षाके लिये आत्म-त्याग की पराकाष्ठा दिखा दी। जिस पराक्रान्त सेना के बल से उसने अङ्गरेज़ सेना को हराया, उसी सेना की सहायता से वह नेपोलियन की तरह अमेरिका का सम्राट् बन सकता था। किन्तु उस योगी के हृदयमें ऐसा नीच भाव न था। उसका उदार हृदय गेरीबाल्डी और मेज़िनीके समान विशाल था। जातीय स्वाधीनताके लिये उसने सेनापतिका पद स्वीकार किया था। जब स्वाधीनता मिल गई, तब उसने पद त्यागने का निश्चय किया। हाँ, पद त्यागने से पहले एक बार स्वाधीन न्यूयार्क नगरमें सेना सहित प्रवेश करना उसने निश्चित किया।

न्यूयार्क में अँगरेज़ी सेना रहा करती थी। आज अमे-रिकाके स्वाधीन होजानेके कारण उसे समुद्रमें जहाजों पर निवास करना पड़ा। आज अमेरिकाके प्राणों का प्राण वाशि-ङ्गटन—विजयी वाशिङ्गटन—शहरमें सवारी निकालेगा। आवा-

जयध्वनिसह उसी देवके लिये आनन्द सज्जित राजमार्ग की ओर जारहे है। देवके देखते दोनों ओर आदमियों का झुंड होगया—मानो राजमार्गमें जीवन प्रवाहित हो चला—हार्दिक आनन्द की लहरें चारों ओर हिलोरें लेने लगीं—उसपर दिग-न्वर का मृदुमन्द सूर्य झकझक चमकने लगा। उसी समय "जय वाशिङ्गटनकी जय! स्वाधीन अमेरिका की जय!" के नाद से पृथ्वी कांप उठी। एक, दो नहीं, सैकड़ों जयध्वनि से आकाश फटने लगा। उस हार्दिक स्वागत को लेता हुआ—अपनी विजयिनी सेनासे घिरा हुआ—स्वर्गीन लोकप्राण वाशिङ्गटन घोड़े पर नगरमें प्रविष्ट हुआ। दोनों ओर के मकानोंसे लगातार फूल बरसाये जाने लगे। अब तक अमेरिकामें स्वाधीन जीवन न था—पर अब स्वाधीन जीवन की लहर में हृदय नाचने लगा। स्वाधीन पताका स्वाधीन वायुके झोंकोंसे थिरक थिरक कर नाचने लगी। नगरमें घुसते ही वाशिङ्गटनने अपने सिर से शिरस्त्राण उतार लिया और सिर झुकाकर सबको प्रणाम करता हुआ बढ़ा। बहुतोंने वाशिङ्गटन का नाम सुना था, पर उसे अब तक न देखा था। कौनसा देवता छिपकर हमारे बीचमें निवास कर रहा था, यह देखनेके लिये प्रायः समस्त अमे-रिका उस दिन आ जुटा। ग्राम शहर और अमेरिकाओंने उस नरदेव को आश्चर्य सहित भक्तिसे निहारने लगीं। जी भर कर उन्होंने अपने उद्धारकर्ताके दर्शन किये। वाशि-ङ्गटन प्रत्येक अमेरिकावासोंके हृदयमें आप आसन जमाकर

बैठ गया। अमेरिकावालों की आँखोंका अञ्जन बन गया। उसे सिर झुकाकर, बार बार देखकर भी आज उनकी तृप्ति नहीं होती। धन्य वीर वाशिङ्गटन! धन्य तेरा जीवन! भूखे प्यासे तूने जो दारिद्र्यव्रत पालन किया था, आज उसका फल तुझे हाथों हाथ मिल गया। अमेरिकाके लिये तूने जो कुछ किया, उसे अमेरिका कभी भूल नहीं सकती। अमेरिकामें कुछ भी जातीय जीवन न था, पर तूने अपने प्राणोंसे उस बिजलीका आह्वान करके एक-एक हृदयमें अपना उद्देश ठूँस दिया। धन्य तेरा जीवन! बिना शिक्षा और बिना अवलम्बके संग्रामभूमिमें उतरकर तूने संसारकी एक प्रबल जातिको परास्त किया! तेरे लिये असाध्य कुछ भी नहीं है।

१७७५ ई०में, वाशिङ्गटनने सेनापतिका पद ग्रहण किया था। उसकी असामान्य वीरतासे अमेरिका स्वाधीन बन गई। १७८३ ई०में, सेनापतिका पद त्याग कर वह साधारण लोगोंकी तरह संसार-यात्रा निर्वाह करने लगा। किन्तु अधिक समय तक वह विश्राम न कर सका। वह केवल युद्ध-विद्या-विशारद ही न था—वह बुद्धिसम्पन्न राजनीतिज्ञ भी था। निष्काम कर्म के लिये वह अमेरिका-वासियों का उपास्य देवता था। जब अमेरिका में यह निश्चय हुआ कि पाँच-पाँच वर्ष के लिये प्रेसीडेण्ट बनाकर राज्य चलाया जाय। उस समय एक स्वरसे अमेरिकावासियोंने वाशिङ्गटनको प्रेसीडेण्ट चुना।

उसे अपने गांवका निवास त्याग कर फिर स्वदेशके अधिनायक का पद ग्रहण करना पड़ा। नियमानुसार पांच वर्ष से अधिक कोई इस पद पर नहीं रह सकता, पर अमेरिका-वासियोंने वाशिङ्गटनको तीन बार प्रेसीडेण्ट चुना। अन्तमें सन् १७८८ ई० को १४वीं दिसम्बरको, जातीय सेवा करते हुए इस महापुरुष का स्वर्गवास होगया। जातीय महासभा और समस्त अमेरिका ने उसके शोकमें एक महीने तक काले वस्त्र पहनकर शोक मनाया।

समस्त अमेरिकावासी अपने पिताकी मृत्युके समान शोकमें डूबने लगे। जिस महापुरुषके आत्मोत्सर्गसे अमेरिका आज सुफला,सुजला पुण्यभरा बन गई—जिसके धर्म और शौर्य से अमेरिका सैकड़ों विपत्तियां सहकर प्रशस्त उन्नति-मार्ग पर चरण रख सकी—जिसे अमेरिकावासी सचमुच अपना पिता समझते थे—उसके परलोकवासी होने पर बच्चे और स्त्रियां तक घरमें सिसक-सिसक कर रोने लगीं। उस शोक को प्रकट करने की शक्ति इस कलममें नहीं है। अमेरिकावालोंने भी जितना उस शोक का अनुभव किया, उतना प्रकट कर सके हों यह सम्भव नहीं। फिर भी व्याख्यान-दाताओंने व्याख्यान देकर, धर्म-याजकोंने उपासना करके, सम्पादकों और लेखकोंने लिखकर, सर्वसाधारणने आंसू बहा कर उस महापुरुष का शोक प्रकट किया।

वाशिङ्गटन सचमुच अमेरिकाका पिता था। जब अमे-

कि अपना कर्त्तव्य-ज्ञान भूल गई थी—चारों ओरसे विपत्ति के बादल घिर गये थे, तब अकेला वाशिङ्गटन ही उस का धैर्य और सहारा था। अस्त्र-शस्त्र नहीं थे, शिक्षा नहीं थी, धन नहीं था, पुराना जातीय गौरव भी नहीं था—ऐसी निर्बल दशामें सेनामें बल और तेज भर कर प्रबल पराक्रान्त सेनासे उसे विजयी बनाना, वाशिङ्गटन जैसे महापुरुष का ही काम था। उसने असाध्य को भी साध्य किया था। उसने निरस्त्र विवस्त्र सेनामें अपने आत्मोत्सर्ग की मोहिनी शक्ति भरी थी। सम्पूर्ण जातिने इस संग्राममें उसे अनियन्त्रित प्रभुता अवश्य दी थी। किन्तु उसकी ओर किसी प्रकारसे किसीने कुछ भी सहायता न की थी। उसने स्वजाति का धन लूटकर कभी अपना या अपनी सेना का पेट नहीं भरा। अनेक बार उसे और उसकी सेना को जङ्गली फल-मूल खाकर अपने दिन गुजारने पड़े थे। इसी महाव्रतके पालनसे उसे वह महती सिद्धि प्राप्त हुई थी। उसने अमेरिकाके पूर्वगौरव की प्रतिष्ठा नहीं की, क्योंकि अमेरिका का पूर्वगौरव था ही नहीं। वह अमेरिकन जाति का सृष्टिकर्त्ता था। वह जातीय गौरव और जातीय प्रतिष्ठाका आदि प्रवर्तक था। ऐसे महापुरुषके नामसे राजधानीका नाम रखना कृतज्ञताका परिचय है। इस महापुरुष की मृत्यु का शोक फ्रान्स और इङ्गलैण्डमें भी मनाया गया। जब प्रसिद्ध नेपोलियन बोनापार्टके पास इसकी मृत्युका समाचार पहुँचा, तब उसने अपनी सेनाके प्रति आदेश प्रचार किया:—

"सैनिको ! वाशिङ्गटन की मृत्यु होगई। उस महात्माने यथेच्छाचारके विरुद्ध संग्राम किया था। उसने स्वदेशमें स्वाधीनता की प्रतिष्ठा की थी। फ्रेञ्च जाति और संसार भर की समस्त स्वाधीनता-प्रिय जातियों को उसकी स्मृति अति प्रिय होगी। फ्रेञ्चोंके निकट उसकी स्मृति अत्यन्त प्रिय है, क्योंकि फ्रेञ्च भी स्वाधीनता के लिये संग्राम कर चुके हैं—इसलिये सब शोक चिन्ह धारण करें।"

आत्मोत्सर्ग की शक्ति जाति को पाताल से उठाकर स्वर्गमें स्थान दिला देती है। संसार के दुःखोंसे तङ्ग आकर, जो पर्णकुटी बना कर जङ्गलमें केवल अपने हित की बात सोचते है—वे उदासी जाति और देशका भला नहीं कर सकते। वे घोर स्वार्थी समझकर केवल अपना भला करना चाहते हैं। समाज, देश और जाति की ओर उनका लक्ष्य नहीं होता। समाज और देशका त्याग करके कोई उसका भला नहीं कर सकता। संसार को मार्ग पर लानेके लिये गुरु गोविन्द और रामदास जैसे त्यागियों की आवश्यकता है—समाजको सुधारनेके लिये मेज़िनी और गेरीबाल्डी जैसे आत्मत्यागियोंकी ज़रूरत है—वालेस और वाशिङ्गटन भी उस कोटिके उच्च त्यागी संन्यासी हैं। उनके आदर्श से जाति की धमनियोंमें शुद्ध तप्त रक्त बहने लगता है। जिसे किसी जाति, धर्म और वर्ण का पक्ष नहीं—जो समानता के नियम पर अपने सब को तराज़ू से उचित भाग करे ऐसेही मनुष्य देश के चिरस्मरणीय की

सामग्री बनते हैं। हमारे भारतवर्ष के अतीत काल की वे ही सामग्री हैं—वही आर्य जाति का शुद्ध रक्त अभी विद्यमान है—जगत्पिता परमात्मा उन्हें अन्याय-अत्याचार की ओर न जाने देकर प्रशस्त, उन्नत और श्रेयस्कर मार्ग दिखावे, यही प्रार्थना है। अन्याय-अत्याचार ही नाश का मूल है, भगवान् आर्य जाति को इस नाशके मूल से दूर रखकर सन्निर्दोष दिखावें, यही विनती है।

